मुक्ति-दूत

लेखक की अन्य रचनाएँ

कविता १·००

मानसी	१
युगदीप	२·५०
अमृत और विष	

नाटक २·०

क्रान्तिकारी (पुरस्कृत)	२·००
मुक्ति-पथ	२·००
कालिदास	१
एकला चलो रे	१·७५
शक-विजय	प्रेस में
अन्तहीन अन्त	

एकांकी १·००

विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य	१
पर्दे के पीछे (पुरस्कृत)	४
आदिम-युग और अन्य नाटक	१·५
जवानी और छः एकांकी	१·०
सात प्रहसन	प्रेस में
समस्या का अन्त	

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

मुक्ति-दूत

□ □ □

□ □

उदयशंकर भट्ट

१९६०



MUKTI DOOT

by

Uday Shankar Bhatt

Rs. 2.00

•


प्रकाशक
रामलाल पुरी
संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट
दिल्ली ६

आवरण :
योगेन्द्रकुमार लल्ला

मूल्य
रुपए २.००

मुद्रक
सेंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस
कमला नगर,
दिल्ली ६

दूसरे संस्करण की भूमिका

प्रसन्नता की बात है कि मेरे इस नाटक का दूसरा संस्करण हो रहा है। इस संस्करण में मैंने 'मुक्तिपथ' का नाम बदल कर 'मुक्ति-दूत' कर दिया है यही मुझे सार्थक लगा। इस संस्करण में मैंने यत्र-तत्र संशोधन भी कर दिए हैं। इससे रंग मंच पर इसे खेलने की सुविधा अपेक्षाकृत अधिक हो गई है।

आशा है अब यह नाटक पाठकों और दर्शकों को आगे से भी अधिक रुचिकर होगा।

अन्त में मैं आत्माराम एण्ड संस के संचालक श्री रामलाल पुरी का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे सभी नाटकों का पुनर्मुद्रण करने का भार स्वीकार किया है।

२ /६/६ (विजया दशमी) —नाटककार
नई दिल्ली

MUKTI DOOT

by

Uday Shankar Bhatt

Rs. 2.00



प्रकाशक

रामलाल पुरी

संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट

दिल्ली ६



आवरण

योगेन्द्रकुमार लल्ला



मूल्य :

रुपए २



मुद्रक :

मद्रम इलैक्ट्रिक प्रेस

कमला नगर,

दिल्ली ६

दूसरे संस्करण की भूमिका

प्रसन्नता की बात है कि मेरे इस नाटक का दूसरा संस्करण हो रहा है। इस संस्करण में मैंने 'मुक्तिपथ' का नाम बदल कर 'मुक्ति-दूत' कर दिया है यही मुझे सार्थक लगा। इस संस्करण मे मैंने यत्र-तत्र संशोधन भी कर दिए हैं। इससे रंग मंच पर इसे खेलने की सुविधा अपेक्षाकृत अधिक हो गई है।

आशा है अब यह नाटक पाठकों और दर्शकों को आगे से भी अधिक रुचिकर होगा।

अन्त में मैं आत्माराम एण्ड संस के संचालक श्री रामलाल पुरी का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरे सभी नाटकों का पुनर्मुद्रण करने का भार स्वीकार किया है।

१ /६/६ (विजया दशमी) —नाटककार
नई दिल्ली

मुक्ति-दूत

पात्र-परिचय

शुद्धोदन	कपिलवस्तु का राजा
कुमार सिद्धार्थ (गौतम) बुद्ध	शुद्धोदन के पुत्र
देवदत्त	मन्त्री का पुत्र सिद्धार्थ का सहचर
सायुक	सिद्धार्थ का सहचर
सुमुख	राजकवि
छन्दक	सारथि
मारक	एक दूत
छायाचित्र	सिद्धार्थ के विचार का चित्र
आलार कालाम	सिद्धार्थ के गुरु
कौण्डिन्य	शिष्य
अश्वजित्	"
वप्र	"
भद्रक	"
बिम्बसार	एक राजा
राहुल	सिद्धार्थ का पुत्र
गोपा	सिद्धार्थ की स्त्री
सुकेशी	सिद्धार्थ की स्त्री की सहचरी
गौतमी	मौसी
विद्युत्माला	गोपा की सखी
चारुनेत्रा	"
सुजाता	एक सेठ की कन्या

महामात्य परिचारिकाएँ कंचुकी ब्राह्मण पंडित नागर जनता के लोग आदि।

पहला अंक

पहला दृश्य

समय—सन्ध्याकाल

[एक छायादार वटवृक्ष के नीचे राजकुमार सिद्धार्थ अपने समवयस्क मित्रों के साथ बैठे हैं। सिद्धार्थ की वयस लगभग सोलह वर्ष की। वीरता, सुन्दरता की मूर्ति। अधोभाग में कौशेय-पट ऊपर जरीदार लाल रेशम की अंगुली। रत्नजटित अंगद और कङ्कण पहने हैं। लाल और पन्ने से जड़ी हुई अँगूठियाँ उँगलियों में। गले में मोतियों का हार। घुंघोर बालों से भरा हुआ। एक तरफ धनुष लटक रहा है। अन्ती-पुत्र देवदत्त तथा भावरिक मित्र भावुक उसी वेश-भूषा में।]

सिद्धार्थ—कहो मित्र भावुक इस बार मृगया में कुछ आनन्द आया ?

भावुक—(जो न जाने क्या सोच रहा है) गुरुजी कहते हैं—कुछ-न-कुछ सोचते रहना चाहिए। किन्तु समझ में नहीं आता कि क्या सोचूँ ? ठीक यह एक वृक्ष है, कितना लम्बा होगा ? बहुत नहीं फिर भी साधारण वृक्षों से बड़ा है। हाँ इसके पत्ते दूसरे वृक्षों से भिन्न अवश्य हैं। ठीक आगे हूँ। आगे भी ।

सिद्धार्थ—भावुक हमारी बात का कोई उत्तर नहीं ?

देवदत्त—एकलव्य ने गुरु द्रोणाचार्य को हाथ का अँगूठा भेंट दिया था। किन्तु भावुक महाशय सोचते हैं मैं भेंट में पैर की एक उँगली ही दूँ। पर प्रश्न यह है कौन-सी उँगली दी जाय ? दुर्भाग्य से पैर की उँगलियों का कोई प्रसिद्ध नाम भी तो नहीं है ?

भावुक—नहीं यह बात नहीं है। मैं सोचता हूँ अमरवल्ली को मता

कहना घोर मूर्खता है। और सवालों के तो जड़ होती है किन्तु इसका तो कोई मूल ही नहीं होता। प्रश्न अधूरा होते हुए भी संगत है। आज ही गुरुजी ने बताया था कि प्रश्न सार्थक होना चाहिए। किन्तु प्रश्न यह है ।

सिद्धार्थ—(हँसकर) ठीक 'प्रश्न' को प्रश्न कहना ही पहले सिद्ध करना होगा। यदि प्रश्न की जगह उत्तर होता और उत्तर की जगह प्रश्न तो ?

देवदत्त—तो उत्तर पहले होता और प्रश्न बाद को। मूल पीछे और शाखा पहले। पुत्र पहले और पिता उसके पश्चात् ?

भावुक—सोचने का यह भी एक प्रकार है। गुरुजी कहते हैं सोचते जाओ। तुम्हें मालूम है सिद्धार्थ आज मैंने गुरु जी से पूछा कि दार्शनिक बनने का क्या उपाय है ? उन्होंने कहा—सोचना। बस तभी से मैं सोच रहा हूँ।

देवदत्त—तुम्हारा सोचने का प्रकार बिलकुल अशुद्ध है।

भावुक—किस तरह ?

देवदत्त—इस तरह सोचो कि यदि वृक्ष के मनुष्य की तरह सिर लग जाता और मनुष्य के हाथी के से कान गधे की पूँछ होती तो वह कितना सुन्दर लगता ?

भावुक—नहीं नहीं तुम हँसी समझते हो। मैं सचमुच शीघ्रातिशीघ्र दार्शनिक हो जाने की चिन्ता में हूँ।

सिद्धार्थ—इतनी जल्दी भी क्या है ? यदि दो-चार दिन का विलम्ब ही हो गया तो कौन पहाड़ टूट पड़ेगा ?

देवदत्त—आप नहीं जानते कुमार। भावुक को एक ज्योतिषी ने बताया है।

सिद्धार्थ—क्या ?

भावुक—तुम मेरे सम्बन्ध में कह रहे हो ? मैं यह सोच रहा था कि ।

देवदत्त—जी आप ही के सम्बन्ध में। ऐसी महान् आत्माएँ संसार में आती ही कब हैं ?

भावुक—(दाँत निपोरकर) यह तो मैं कैसे कहूँ। हाँ ज्योतिषी ने मेरे सम्बन्ध में तुम्हें क्या बताया था ?

देवदत्त—कहा था शुभ संवत्सर के मिथुनार्क में आप कृष्ण द्वादशी के दिन ८ घड़ी ४० पल तृतीय प्रहर में एक दार्शनिक बालक का जन्म [illegible]

कुन्त के यहाँ होगा ।

साधुक—नहीं युवराज मैंने निश्चय किया है कि मैं दार्शनिक बनूँगा । देवदत्त तो हँसते हैं ।

सिद्धार्थ—तो साधुक दार्शनिक होते ही तुम क्या हो जाओगे ?

साधुक—युवराज दार्शनिक होते ही मनुष्य सब कुछ जान जाता है ।

सिद्धार्थ—अर्थात् ।

साधुक—यही कि ठहरो मैं सोच लूँ । अभी हो तो नहीं गया हूँ ।

देवदत्त—दार्शनिक होने के लिए कुछ उपाय भी करने चाहिए, वह तुमने कहाँ किए हैं ?

साधुक—हाँ यह भी कह डालो । मैं किसी तरह का अभाव अपने में नहीं रहने देना चाहता । कहो किन्तु तुम तो अभी दार्शनिक हो नहीं । फिर मैं तुम्हारी बात कैसे मान लूँ ? प्रश्न यह है ।

सिद्धार्थ—(हँसकर) यह प्रश्न नहीं उत्तर है ।

साधुक—तुमने ठीक कहा यह उत्तर है । मैं सोचता हूँ क्या आठवाँ पदार्थ नहीं हो सकता ? यदि मैं दार्शनिक बन कर आठवाँ पदार्थ सिद्ध कर दूँ तो कितना यश हो युवराज ?

देवदत्त—व्यर्थ तुम कहो सो पदार्थ है । द्रव्य गुण कर्म विशेष सामान्य समवाय अभाव और मेरी चिन्ताएँ, सोचने का प्रकार ।

साधुक—नहीं-नहीं कुछ और सोचो । गुरुजी ठीक कहते हैं सोचते रहना चाहिए ।

सिद्धार्थ—अच्छा यह बताओ आज तुम्हें मृगया में कुछ आनन्द आया ?

साधुक—'आनन्द' यह भी एक सोचने की वस्तु है । प्रश्न यह है आनन्द हृदय की वस्तु है अथवा मस्तिष्क की ।

देवदत्त—मधुर यह अनुभव की चीज है सोचने की नहीं । तुम दार्शनिक नहीं बन सकते ।

साधुक—क्या सचमुच नहीं ऐसा न कहो भाई ।

[अंगरक्षक बहुत-से मारे हुए पशु लाकर पटक देते हैं]

देवदत्त—देखो कुमार, यह हरिणी है। मैंने पेट फाड़कर इसके बच्चे को निकाला है। कहाँ है वह बच्चा? ले आओ!

[अंगरक्षक वृक्ष से लटकता उस अधमरे बच्चे को लाता है]

अंगरक्षक—जी तो जाएगा। किन्तु ।

दूसरा—आँखें अभी बन्द हैं। साँस ले रहा है।

सिद्धार्थ—(उसे ध्यान से देखकर) कितना निरीह पशु है! तुमने बुरा किया देवदत्त। (उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए) इसे थोड़ा जल दो। (अंगरक्षक दौड़कर पानी लाकर उसके गले में डालते हैं) ऐसे पशु को मारने में कोई शिक्षा नहीं है।

देवदत्त—आप बड़े भावुकहृदय हैं कुमार, मृगया के दो अर्थ हैं दुष्ट पशुओं की हिंसा और भोजन।

सिद्धार्थ—हरिणी के पेट से निकले इस शावक को देखकर न जाने मुझे कैसा हो रहा है!

तापुत्र—(सोचता हुआ) वन का वृक्ष की चोटी से सीधा सम्बन्ध क्या हो सकता है, यही सोच रहा हूँ?

देवदत्त—सोचो।

[दो मछुए मछलियों की टोकरी लिए आते हैं]

पहला—चौधरी ने युवराज को भेंट के लिए यह टोकरी भेजी है। वह स्वयं भी आ रहे हैं।

देवदत्त—राजा स्वयं प्रजा को ईश्वर का दिया हुआ उपहार है। मछलियाँ तो अच्छी दीख पड़ती हैं।

पहला—इस प्रान्त में इससे सुन्दर और स्वादिष्ट मछली है ही नहीं श्रीमान्! स्वयं महाराज की सेवा में कभी-कभी यही मछली जाती है।

दूसरा—ए, ए, ए, ए, (हाथ हिलाकर कुछ संकेत करता है)

सिद्धार्थ-देवदत्त—(एक साथ) है यह क्या? क्या यह बोलता नहीं है? इसे क्या हो गया?

पहला—यह गूँगा है महाराज!

सिद्धार्थ—गूंगा क्या ! क्या ऐसा भी मनुष्य होता है ? (आश्चर्य में भर जाते हैं)

पहला—यह बोल नहीं सकता यह सुन भी नहीं सकता।

सिद्धार्थ—तो यह अपना कार्य कैसे चलाता होगा ? महान् आश्चर्य है देवदत्त !

[गूंगा 'ए, ए ए, ए' करता है हाथ से संकेत करके न जाने क्या-क्या कहता है और हंसता है।]

देवदत्त—यह प्रकृति का विकार है यह क्या कह रहा है ? यह बोल नहीं सकता सुन भी नहीं सकता।

पहला—हाँ महाराज यह सुन भी नहीं सकता। यह कहता है मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है।

सिद्धार्थ—सुन भी नहीं सकता ?

पहला—नहीं सुन भी नहीं सकता।

देवदत्त—इसके नेत्र बड़े तीव्र हैं। इन्हीं के द्वारा यह काम चलाता है।

साधक—हैं-हैं ! क्या ऐसा भी होता है ?

सिद्धार्थ—(सोचते हुए) महान् आश्चर्य है देवदत्त ?

देवदत्त—हमारे नगर में ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो सुन नहीं सकते बोल नहीं सकते देख नहीं सकते।

सिद्धार्थ—देख भी नहीं सकते ! मैं उनको देखना चाहता हूँ।

साधक—मैं सोचता हूँ यदि इसके जिह्वा नहीं है तो यह जीवन कैसे करता होगा !

साधक—मनुष्य जीवन में रोता अधिक है या हँसता अधिक है। हाँ

सिद्धार्थ—ऐसा हो है क्या नहीं ऐसा नहीं हो सकता।

देवदत्त—मैं ठीक कह रहा हूँ कुमार। यह तो संसार है यहाँ गूंगे बहरे लूले लँगड़े अंधे काने सभी हैं।

सिद्धार्थ—यह सब कुछ मेरी समझ में नहीं आता भाई।

मधुमा—युवराज चाहें तो यह गूंगा अपना नाच दिखावे। यह नाचता है।

साधुक—यह तो क्रिया है न ? किन्तु प्रश्न यह है कौन-सी क्रिया है स-कर्मक या अकर्मक ?

देवदत्त—हाँ हाँ इससे कहो कि यह नाचे ।

[मजुआ गूँगे को संकेत से नाचने के लिए कहता है । गूँगा नाचने लगता है । ए ए ए ए के उतार-चढ़ाव के साथ गाता भी है । उसका नृत्य देखकर सब लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं । केवल कुमार को कभी-कभी हँसी आती है । इसी समय ग्राम का चौधरी तथा अन्य लोग भी इकट्ठे हो जाते हैं। जो उपहार वे लाए हैं वह युवराज के सामने रख दिया जाता है । धीरे-धीरे और लोग भी आकर नृत्य में सम्मिलित हो जाते हैं । नृत्य एक विशाल रूप धारण कर लेता है । सिद्धार्थ एक चेचक से भरी हुई कन्या के पास जाकर उसे देखने लगते हैं ।]

सिद्धार्थ—ठहरो ठहरो ! देखो इस कन्या को क्या हो गया ! इसका सम्पूर्ण शरीर न जाने कैसा हो गया है !

चौधरी—(घबराकर कन्या को सिद्धार्थ के पास से हटा देता है) जा दूर हो । युवराज इसके माता निकली थी । माता !

सिद्धार्थ—माता क्या ?

देवदत्त—यह एक प्रकार का रोग है कुमार !

सिद्धार्थ—रोग है तो क्या यह मुझे भी हो सकता है ?

सब—आपको क्यों हो ईश्वर न करे ।

एक—सबको हो सकता है ।

सिद्धार्थ—देखो यह कहता है सबको हो सकता है । यह नाच बन्द करो । मैं नहीं देखना चाहता । (चुपचाप सोचते हुए बैठ जाते हैं । इतने में महाराज शुद्धोदन तथा कुछ लोग आ जाते हैं । सिद्धार्थ उठकर उनका अभिवादन करते हैं ।)

शुद्धोदन—(पुत्र को सिर से चूमकर) आज की मृगया अच्छी रही पुत्र !

सिद्धार्थ—हाँ पिताजी ! हमने आज बहुत से पशु मारे हैं—व्याघ्र, रीछ, हरिण । किन्तु· ।

मन्त्री—महाराज युवराज पूरे क्षत्रिय हैं।

शाक्य—मनुष्य न तो क्षत्रिय है न ब्राह्मण। यह तो स्वार्थ की कल्पना है मनुष्य की कल्पना।

शुद्धोदन—किन्तु क्या?

सिद्धार्थ—किन्तु अब मैं मृगया कभी न करूँगा।

शुद्धोदन—क्यों?

सिद्धार्थ—इन पशुओं में और हममें क्या भेद है? हम और ये एक से ही तो हैं।

मन्त्री—यह तो क्षत्रिय का धर्म है युवराज। 'जीवो जीवस्य जीवनम्'[1]

सिद्धार्थ—स्वार्थ की हत्या किसी का भी धर्म हो सकता है यह मेरी समझ में नहीं आता। देखिए, देवदत्त ने एक हरिणी को मारा उसके पेट से एक शावक निकला है। क्या यह हत्या नहीं है? (उस बच्चे को देखकर) कितना निरीह पशु है!

शुद्धोदन—तुमने इन लोगों का नाच देखा युवराज। बहुत अच्छा नाचते हैं।

सिद्धार्थ—(चुप रहते हैं थोड़ी देर बाद) जी। यह कैसी विचित्र बात है। इनमें एक गूंगा है जो बोल नहीं सकता। एक कन्या है जिसके शरीर पर न जाने क्या हो गया है। क्या मैं भी ऐसा ही हो जाऊँगा पिताजी!

मन्त्री—शिव-शिव कहो राजकुमार! आप ऐसे क्यों होने लगे?

सिद्धार्थ—नहीं मन्त्रीजी मैं ऐसा क्यों नहीं हो सकता। मैं भी ऐसा हो सकता हूँ। एक व्यक्ति कह रहा था, सब ऐसे हो सकते हैं।

शुद्धोदन—नहीं पुत्र तुम ऐसे नहीं हो सकते। (चौधरी से) किसने कहा था?

चौधरी—(एक दूसरे को देखकर) किसने कहा था? इसने—इसने। (पकड़कर उसे मारने लगता है।)

---

१ जीव जीव का जीवन है।

साधुक—यह तो क्रिया है न ? किन्तु प्रश्न यह है, कौन-सी क्रिया है स-कर्मक या अकर्मक ?

देवदत्त—हाँ हाँ इससे कहो कि यह नाचे ।

[मधुमा गूंगे को संकेत से नाचने के लिए कहता है । गूंगा नाचने लगता है । ए ए ए ए के उतार-चढ़ाव के साथ गाता भी है । उसका नृत्य देखकर सब लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं । केवल कुमार को कभी-कभी हँसी आती है । इसी समय ग्राम का चौधरी तथा अन्य लोग भी इकट्ठे हो जाते हैं । जो उपहार वे लाए हैं वह युवराज के सामने रख दिया जाता है । धीरे-धीरे और लोग भी आकर नृत्य में सम्मिलित हो जाते हैं । नृत्य एक विशाल रूप धारण कर लेता है । सिद्धार्थ एक चेचक से भरी हुई कन्या के पास जाकर उसे देखने लगते हैं ।]

सिद्धार्थ—ठहरो ठहरो ! देखो इस कन्या को क्या हो गया ! इसका सम्पूर्ण शरीर न जाने कैसा हो गया है !

चौधरी—(झपटकर कन्या को सिद्धार्थ के पास से हटा देता है) जा दूर हो । युवराज इसके माता निकली थी । माता !

सिद्धार्थ—माता क्या ?

देवदत्त—यह एक प्रकार का रोग है कुमार !

सिद्धार्थ—रोग है तो क्या यह मुझे भी हो सकता है ?

सब—आपको क्यों हो ईश्वर न करे ।

एक—सबको हो सकता है ।

सिद्धार्थ—देखो यह कहता है सबको हो सकता है । यह नाच बन्द करो । मैं नहीं देखना चाहता । (चुपचाप सोचते हुए बैठ जाते हैं । इतने में महाराज शुद्धोदन तथा कुछ लोग आ जाते हैं । सिद्धार्थ उठकर उनका अभिवादन करते हैं ।)

शुद्धोदन—(पुत्र को सिर से सूँघकर) आज की मृगया अच्छी रही पुत्र !

सिद्धार्थ—हाँ पिताजी ! हमने आज बहुत से पशु मारे हैं—व्याघ्र रीछ, हरिण । किन्तु ।

मन्त्री—महाराज युवराज पूरे क्षत्रिय हैं।

साधक—मनुष्य न तो क्षत्रिय है न ब्राह्मण। यह तो स्वर्ग की कल्पना है मनुष्य को नरकना।

पुरोहित—किन्तु क्या?

सिद्धार्थ—किन्तु अब मैं मृगया कभी न करूँगा।

पुरोहित—क्यों?

सिद्धार्थ—इन पशुओं में और हममें क्या भेद है? हम और य एक से ही तो हैं!

मन्त्री—यह तो क्षत्रिय का धर्म है युवराज। 'जीवो जीवस्य जीवनम्'

सिद्धार्थ—धर्म की हत्या किसी का भी धर्म हो सकता है यह मेरी समझ में नहीं आता। देखिए, देवदत्त ने एक हरिणी को मारा उसके पेट से एक शावक निकला है। क्या यह हत्या नहीं है? (उस बच्चे को देखकर) कितना निरीह पशु है!

पुरोहित—तुमने इन लोगों का नाच देखा युवराज। बहुत अच्छा नाचते हैं।

सिद्धार्थ—(चुप रहते हैं थोड़ी देर बाद) जी। यह कैसी विचित्र बात है। इसमें एक गूँगा है जो बोल नहीं सकता। एक कन्या है जिसके शरीर पर न जाने क्या हो गया है। क्या मैं भी ऐसा ही हो जाऊँगा पिताजी!

मन्त्री—शिव-शिव कहो राजकुमार! आप ऐसे क्यों होने लगे?

सिद्धार्थ—नहीं मन्त्रीजी मैं ऐसा क्यों नहीं हो सकता। मैं भी ऐसा हो सकता हूँ। एक व्यक्ति कह रहा था सब ऐसे हो सकते हैं।

पुरोहित—नहीं पुत्र तुम ऐसे नहीं हो सकते। (चौधरी से) किसने कहा था?

चौधरी—(एक दूसरे को देखकर) किसने कहा था? दुर्जन—दुर्जन। (पकड़कर उसे मारने लगता है।)

सिद्धार्थ—नहीं नहीं मारो मत। इसने सत्य कहा था—मैं भी ऐसा हो सकता हूँ। सब ऐसे हो सकते हैं। संसार न जाने कैसा है? संसार में सभी काले सूने सौंवरे सभी हैं। मैं इन सबको देखना चाहता हूँ। ये ऐसे क्यों हो गए। हाँ? (ध्यानस्थ हो जाते हैं)

मन्त्री—यह साधारण व्यक्ति नहीं है महाराज?

शुद्धोदन—मुझे डर लगता है मन्त्रीजी। चलो गौतमी चलो। (उदास होकर टहलने लगते हैं)

सिद्धार्थ—न जाने मुझे क्या हो रहा है। जीवन रोग मृत्यु। दुःख रोग मृत्यु यह सब क्या है क्यों है? क्या सदा से ही ऐसा चल रहा है? क्यों क्या इसका कोई उपाय नहीं है?

[ध्यानस्थ हो जाते हैं]



दूसरा दृश्य

समय—१० बजे प्रातःकाल

[कुमार सिद्धार्थ अपने प्रासाद के निकट वाटिका में टहल रहे हैं। वाटिका फूलों की सुगन्धि से महक रही है। बेला, चमेली जूही मालती और गुलाब पुष्पों के पौधे पंक्तियों में लगे हुए हैं। बीच में अनार नीबू कमरख आदि के वृक्ष भी हैं। उद्यान छोटा होते हुए भी बहुत सुन्दर है। उद्यान के बीच में एक संगमरमर का फव्वारा है जिसमें चारों ओर अप्सराएं बनी हैं। उनके सिर से पानी की धार निकलकर चारों ओर बिखर रही है। फव्वारे के चारों ओर संगमरमर की कुर्सियां बनी हुई हैं। श्वेत रंग के प्रासाद पर चमकीली धूप की किरणों की प्रतिच्छाया से फव्वारे के जल की लहरों पर एक नवीन आभा दिखाई देती है मानों वाटिका में सब ओर ज्योतिमा छा गई हो। साथ

में सुकेशी नाम की परिचारिका वह भी सिद्धार्थ की अवस्था की है। सुकेशी
चंचल किन्तु कोमनीय मुखाकृति की लड़की है। नितम्ब तक लटकती केशराशि
जिसमें फूल गुंथे हैं। स्तनों का भाग कौशेय पट्ट से बँधा हुआ। बाहुओं में
कटित कंकण हाथों में स्वर्ण-कंकण उंगलियों में मुद्राएं। सुकेशी राजकुमार के
पीछे और आगे चलती है। कभी-कभी किसी पुष्प की ओर संकेत करती
है। कभी कोई पुष्प तोड़कर कुमार को भेंट करने लगती है। चाहती है बोल
कर हृदय की सब चपलता सौरभ और आनन्द उड़ेल दे। पर कुमार की
ध्यानमुद्रा से आतंकित उसका तन शरीर सिमट रहा है। इतने पर भी उसकी
चंचलता कम नहीं होती। तितली की तरह फुदक रही है। कुमार कभी
आकाश को देखते हैं कभी फूलों की सुरभि पाने के लिए ठिठक उठते हैं।
कभी-कभी फूल तोड़कर उसे देखते हैं मानों उसके भीतर का कोई रहस्य पा
रहे हों। एकाएक ठहरकर ।]

सिद्धार्थ—(ध्यान से देखकर) सुकेशी क्या तुम बता सकती हो, इन पुष्पों
में परस्पर अन्तर क्यों है ?

सुकेशी—(एकदम पीछे घूमकर मुस्कराती हुई) भला मैं क्या जानूं कुमार
हां इतना जानती हूं इनका यह अन्तर स्वाभाविक है। पर पुष्प तो प्रकृति का
चरम विकास है।

सिद्धार्थ—मैं रह रहकर सोचता हूं बीच में इतना भेद क्यों है ? क्या
सभी इसी तरह एक प्रकृति के उपहार नहीं हैं ?

सुकेशी—(थिरकती हुई फिर पीछे घूमकर) प्रकृति मनुष्य के आनन्द का
भण्डार है। इसके द्वारा हम अपनी चेतना में एक नवीनता और प्राणों
स्फूर्ति पाते हैं।

सिद्धार्थ—(ठहरकर) तो यही सुख है जो हम जीवन में पाते हैं, वस्तुतः
सुख तो आत्मा की अनुभूति है न ?

सुकेशी—युवराज मेरे जीवन में एक ही विचार उठता है। क्यों न मैं
फूल की तरह खिलकर सृष्टि को सुख से विभोर कर दूं। आकाश की
तारकमालाओं की तरह विश्व के आंगन में फैल जाऊं। क्यों न सुधांशु

किरणों के समान मनुष्य के अन्तस्तल को शीतलता के सुख से आप्लावित कर दूँ ? (कुमार की ओर देखकर) तुम चुप हो बोलते क्यों नहीं ? बोलो निशा-नाथ की तरह आकाश में प्रति रात उठने वाले सुख की भाँति मेरे जीवन का *एक-एक क्षण तुम्हारी सेवा में बीत जाय यही मेरी चरम अभिलाषा है राजकुमार !*

सिद्धार्थ—पर मैं देखता हूँ हमारी तरह सब सुखी नहीं हैं। अभी उस दिन मैंने एक वृद्ध को देखा उसका शरीर शिथिल था उसके मुख में झुर्रियाँ पड़ गई थीं। उसकी देहयष्टि भूकम्प की तरह डगमगा रही थी। वह सूखकर कंकाल मात्र रह गया था। ऐसा क्यों होता है सुकेशी मैं यही सोचा करता हूँ।

सुकेशी—यह व्यर्थ की बातें हैं कुमार संसार में सब कुछ अपने ढंग से होता है, उसे कोई रोक नहीं सकता। (सोचकर) जाने दीजिए। क्या आपको *वह गीत सुनाऊँ जो उस दिन मैंने लिखा था ?*

सिद्धार्थ—(सुकेशी की ओर ध्यान से देखकर) गीत गीत तो मानसिक वेगों का लय और ताल से बंधा हुआ प्रवाह उद्गार है। उसमें तो वही रहता है *जो वक्ता में उस समय के हृदय की स्फूर्ति होती है।* क्या तुम मेरी चिन्ता के प्रतिफल स्वरूप गीत सुना सकोगी ? मुझे तो तुम वह गीत सुनाओ जो उस दिन गाया था।

सुकेशी—(हाथ जोड़कर) अनुगृहीत हूँ सुनिए—

कौन हँस शृङ्गार करता ?

क्षितिज में रवि स्वप्न लाये नील कोमल काम बाँधे,
दूर हृदय में भर प्रलयंकर बहाता शोणित महार्णव
बूँद में जो लगी जीवन-स्वर्ण मिस संहार भरता
कौन हँस शृङ्गार करता ?

कौन बजते रागिनी के, अमर गान विहागिनी के,
तीव्र कोमल तार खींचे तोड़ जाता मौन भींचे
और टूटी भीड़, बिखरे स्वप्न में झंकार भरता
कौन हँस शृङ्गार करता ?

[गाना बन्द हो जाने पर सुकेशी देखती है कुमार पहले से भी अधिक उन्मन एवं उदास हो उठे हैं। एकदम घबराकर पास जाती हुई।]

सुकेशी—क्या हुआ कुमार क्या सोच रहे हैं ?

सिद्धार्थ—यही जो सोचने के लिए मैं पैदा हुआ हूँ ?

सुकेशी—(घबराकर) यह आप क्या कह रहे हैं ?

सिद्धार्थ—(उसी ध्यान में) सोचता हूँ जीवन क्या इतना क्षणस्थायी है जैसे मेरे स्वप्न संचित होकर इस गीत में समा गए हैं।

सुकेशी—(उसी मुद्रा से) पर मैंने तो यह आपकी प्रसन्नता के लिए गाया था।

सिद्धार्थ—हाँ ठीक है। इस गीत ने मुझे जीवन की ओर अधिक वेग से उन्मुख किया है, सुकेशी !

सुकेशी—(पीठ फेरकर घबराती हुई) हाय क्या करूँ ! मैं क्या जानती थी कि इस गीत से कुमार आनंदित न होकर व्यग्र हो उठेंगे। (एक दम पैरों पर गिरकर) मुझे इस गीत को सुनाकर बहुत दुख हुआ है।

सिद्धार्थ—(उठाते हुए) नहीं चिन्ता मत करो सुकेशी ! मैं यह सोचता हूँ कि जीवन के पीछे ऐसी कौन सी शक्ति है जो मानव के प्राणों को चूसे जा रही है। कदाचित् जीवन का यह विलास स्थायी रह सके ?

सुकेशी—जीवन का विलास स्थायी है कुमार ! प्राणों की सुख भरी हिलोर उठते उठते नवजीवन के चरम उत्कर्ष तक पहुँच जाती है तभी हमारा संसार सोने का हो जाता है। तुम उठो और एक बार देखो इन फूलों में कितना मद है, कितनी सुगन्धि भरी है इनकी पखुड़ियों में इनकी एक-एक लहराती लता में ? यही जीवन है यही स्वर्ग है कुमार !

[बादल की एक घटा आकाश में छा जाती है गड़गड़ाहट होने लगती है मोर नाचने लगते हैं सब ओर प्रकृति का उल्लास छा जाता है। दोनों मूक मुग्ध से ऊपर देखते रहते हैं।]

सिद्धार्थ—यह भी जीवन का एक रूप है।

सुकेशी—आनन्दमय उल्लासमय !

सिद्धार्थ—(ध्यानस्थ होते हुए एकदम जागकर) हाँ । पिता कहते हैं संसार सुख से पूर्ण है ! गुरु कहते हैं संसार कर्तव्य भूमि है । मौसी कहती है तुम राज्य करने के लिए पैदा हुए हो । पर मैं क्या हूँ यह कोई नहीं बताता । तुम बता सकती हो सुकेशी मैं क्या हूँ—किसलिए हूँ ?

सुकेशी—मैं क्या जानूँ कुमार ! वह देखो आकाश में उड़ती हुई हंस पंक्ति कैसी सुन्दर दिखाई देती है ! मानो बादलों ने बड़े-बड़े मोतियों की माला पहन ली हो ।

सिद्धार्थ—नहीं ऐसा नहीं है । ऐसा मालूम होता है मानो नीले बादल के क्षतविक्षत शरीर से पीब की बूँदें निकलकर मालाकार बन गई हों ।

सुकेशी—नहीं कुमार, ऐसा सोचने का तुम्हें अधिकार नहीं है । तुम राजकुमार हो ।

सिद्धार्थ—पर राजकुमार होने से क्या कोई ऐसा सोचने का मेरा अधिकार छीन लेगा ! मुझे तो इस संसार में दुःख ही दुःख दिखाई देता है ।

सुकेशी—कैसे कैसे ?

सिद्धार्थ—अभी उस दिन मैं मृगया के लिए निकला तो लौटकर मैंने ए
कन्या को देखा । एक मृत पुरुष को देखा । मृगया में हरिणी के पेट से बच
निकला । मैंने अपने साथियों से पूछा किन्तु वे उसका कोई उत्तर न दे सके

सुकेशी—यह तुम्हारा भ्रम है कुमार । वह सब कुछ भी नहीं था ।

सिद्धार्थ—यह सब कुछ भी नहीं था । वही तो था जिसने मुझे चिन्ति
कर दिया है ।

सुकेशी—आप उन बातों को क्यों सोचा करते हैं ?

सिद्धार्थ—न जाने क्यों ! पर मुझे इच्छा होती है कि यह सब बातें मैं जान लूँ ।

सुकेशी—इन बातों को जानने से कोई लाभ नहीं है । आपको ज्ञात है मैं आपको प्रसन्न करने आपका मनोविनोद करने के लिए रखी गई हूँ । पर आप तो जैसे—।

सिद्धार्थ—मैं जानता तो कुछ नहीं हूँ । पर इच्छा होती है प्रत्येक वस्तु

विश्लेषण करके संसार की एक-एक चीज़ को जान लूँ। समझ में नहीं
ता यह सब कैसा खेल है ? अच्छा सुकेशी तुम बता सकती हो इन बादलों
पीछे क्या है ?

सुकेशी—आपको एक और गीत सुनाऊँ !

सिद्धार्थ—नहीं गीत मैं नहीं सुनूँगा।

सुकेशी—कहिए तो वह नया नाच दिखाऊँ जो उस दिन मालवी ने महा
ज को दिखाया था।

सिद्धार्थ—नृत्य मुझे तनिक भी आकृष्ट नहीं कर पाता। (सामने ध्यान
देखकर) अरे देखो सामने यह क्या गिरा। (दोनों उधर ही दौड़ जाते हैं
और देखते हैं कि एक हंस तीर के साथ घायल होकर छटपटा रहा है। कुमार
से देखकर गोद में उठा लेते हैं और धीरे-धीरे उसके शरीर से बाण निकालते
। बाण निकालने के बाद उसे फव्वारे के पास ले जाकर उसकी चोंच में पानी
लते हैं। और उसके शरीर पर हाथ फेरते हैं। सुकेशी अधीन होकर यह सब
खती रहती है।)

सुकेशी—(कुमार को तन्मय और उदास देखकर) कुमार इतने उदास न
हों। यह तो साधारण पक्षी है। ऐसे हंस और पचासों मिल सकते हैं।

सिद्धार्थ—तुम नहीं समझती सुकेशी न जाने किसने इसे बाण मार कर
घायल कर दिया। (हंस की ओर देखकर) कितना मूक पक्षी है यह ! (आँखों
में आँसू छलछला आते हैं।)

सुकेशी—पक्षी तो सभी मूक होते हैं कुमार !

सिद्धार्थ—क्या ही अच्छा होता कि मैं इसकी पीड़ा को जान पाता। यदि
प्राण देकर भी इसकी रक्षा कर सकूँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। (उसके
शरीर पर हाथ फेरते हैं। पक्षी आश्वस्त-सा दिखाई देता है।)

सुकेशी—युवराज यह क्या कह रहे हैं ? भिन्न भिन्न कहाँ आप और कहाँ
यह साधारण पक्षी।

[इतने में देवदत्त बाग में प्रवेश करता है]

देवदत्त—हैं हैं कुमार ! यह आप क्या कर रहे हैं इसे छोड़ दीजिए। यह

तो मेरी मृगया है, इसे तो मैंने मारा है। सचमुच सुकेशी आज का मेरा आखेट सफल सिद्ध हुआ! लाइए कुमार, इसे मुझे दीजिए। (लेने को हाथ बढ़ाता है।)

सिद्धार्थ—(दृढ़ता से) नहीं यह नहीं हो सकता। तुमने इस निरपराध की हत्या की है देवदत्त!

देवदत्त—तो इसमें बुराई क्या हुई यह तो बहुत साधारण बात है।

सुकेशी—क्षत्रियों का यह तो काम ही है कुमार!

देवदत्त—और यह कोई नई बात भी तो नहीं है?

सुकेशी—ऐसा तो सदा से होता चला आया है।

देवदत्त—यह किसी प्रकार का अपराध होगा ऐसी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। लाइए लाइए न! यह मेरा है मैंने इसे मारा है। सबसे बड़ी बात तो यह है कुमार, कि आज यह मेरी सबसे बड़ी विजय है।

सिद्धार्थ—(आश्चर्य) यह विजय है?

देवदत्त—आश्चर्य हो रहा है?

सिद्धार्थ—दूसरे की मृत्यु को तुम विजय कहते हो। नहीं मैं यह हंस तुम्हें नहीं दे सकता।

दोनों—(आश्चर्य और घबराहट के साथ) क्यों?

सिद्धार्थ—मारने वाले से जिलाने वाले का अधिकार बड़ा होता है। इसलिए, देखो यह पक्षी कैसे दया भरी दृष्टि से मेरी ओर देख रहा है। नहीं भाई, यह पक्षी मेरा है। मैं इसे तुम्हें नहीं दे सकता। नहीं दे सकता। जाओ।

देवदत्त—परन्तु धनुर्विद्या के अनुसार तो यह पक्षी मेरा है इस पर मेरा अधिकार है। आज यह मेरा आहार होगा।

सिद्धार्थ—आहार! यह तुम्हारा आहार होगा (तड़पकर) लज्जा नहीं आती कहते!

देवदत्त—(उसी दृढ़ता से) लज्जा की क्या बात है! तुम राजा के पुत्र हो इसलिए आज ऐसा कहते हो! (क्रोध से कांपने लगता है)

सिद्धार्थ—(हंस को जमीन पर रखकर और देवदत्त के पास जाकर) यह

तुम्हारा भ्रम है। मैं मनुष्य के नाते तुमसे प्रार्थना करता हूँ, कि इस पक्षी को
तुम छोड़ दो।

देवदत्त—तुम्हारी यह बात किसी तरह मेरी समझ में नहीं आती कि
इस पक्षी को क्यों छोड़ दूँ?

सिद्धार्थ—इसलिए कि यह हिंसा है।

देवदत्त—परन्तु यह कोई नई बात तो है नहीं। क्षत्रियों का तो य
आहार है।

सिद्धार्थ—(ध्यान से सोचते हुए) यह आहार है? (स्वगत) मैं भी
इसी का आहार करता हूँ। (प्रकट) नहीं नहीं अब यह नहीं होगा। मांस
आहार! नहीं यह नहीं हो सकता। नहीं भाई देवदत्त (चिन्ता में घूमते हुए
देखता हूँ नीचे से ऊपर तक भीतर से बाहर तक सभी बुरा है। क्या करूँ
नहीं यह नहीं हो सकता!

देवदत्त—तो जो चाहो करो मेरा पक्षी मुझे दे दो।

[शुद्धोदन और गौतमी का प्रवेश]

शुद्धोदन—क्या है कुमार?

देवदत्त—(सिर झुकाकर राजा-रानी को प्रणाम करता हुआ) महारा
की जय हो, माता गौतमी की जय हो। न्याय की भिक्षा—(एक तर
खड़ा हो जाता है।)

गौतमी—महाराज की जय हो कुमार ने आर्य देवदत्त के शरविद्ध हंस
रक्षा की है। कुमार के प्रयत्न से हंस फिर जी उठा है। कुमार उसे देवदत्त
नहीं देना चाहते।

सिद्धार्थ—महाराज मैं न्याय चाहता हूँ। देवदत्त ने इस पक्षी को मा
और मैंने उसे जीवित किया। अब इस पर किसका अधिकार है?

देवदत्त—आर्यशास्त्र के अनुसार मारने वाले का।

सिद्धार्थ—किन्तु मेरे मतानुसार तो मेरा ही अधिकार है। मैंने इसे जि
जीवित किया। आर्यशास्त्र गलत है।

गौतमी—(कुमार के पास जाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई) मैं तु

और हंस मैंगवा दूंगी बेटा यह हंस देवदत्त को दे दो।

शुद्धोधन—मैं आज ही हंसों को कई जोड़ियाँ मँगवा देने की कर्मचारी भेजूँगा।

सुकेशी—(झुककर) प्रश्न यह नहीं है महाराज। कुमार इस निरपराध-पक्षी को देवदत्त को केवल हिंसा के कारण देना नहीं चाहते।

सिद्धार्थ—पक्षी में भी तो वैसे ही प्राण हैं जैसे मुझ में। दुखी के प्रति दया दिखाना मेरा कर्तव्य है, मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। यदि देवदत्त इसकी रक्षा का वचन दें तो उन्हें यह पक्षी देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

सब—(आश्चर्य से) पक्षी के प्रति दया?

देवदत्त—नई बात है।

शुद्धोधन—बात बुरी तो नहीं है।

सुकेशी—सर्वथा नई बात है महाराज!

गौतमी—कुछ समझ में नहीं आता।

शुद्धोधन—देवदत्त मैं चाहता हूँ—न्याय होते हुए भी तुम यह पक्षी कुमार को दे दो। कुमार की इच्छा के सामने न्याय अन्याय कुछ भी मुझे नहीं सूझ पाता। (मधुमय् हो उठता है।)

गौतमी—हाँ बेटा!

सुकेशी—हाँ आर्य देवदत्त।

सिद्धार्थ—मैं पक्षी पर कोई अधिकार नहीं रखना चाहता। केवल रखना चाहता हूँ।

शुद्धोधन—हाँ कहो!

देवदत्त—मैं कुछ-कुछ समझ रहा हूँ।

सिद्धार्थ—(अनायास ही) सब जीवों पर दया दिखाना ही मनुष्य का कर्तव्य है। यही मैं तुमसे चाहता हूँ देवदत्त? मुझे और कुछ नहीं चाहिए। यह लो (हंस को देवदत्त की गोद में रखकर चले जाते हैं।)

देवदत्त—(आश्चर्य से) सब जीवों पर दया दिखाना ही मनुष्य का कर्तव्य है। बिलकुल नई बात है।

सुकेशी—सचमुच ऐसा तो कभी नहीं सुना गया। कुमार गए, मैं भी जाती हूँ। (जाती है)

गौतमी—मेरा बेटा कितना उदार है महाराज!

शुद्धोदन—(भयभीत होकर) मुझे डर लग रहा है गौतमी कहीं इस महत्ता और उदारता में मेरी आँखों का तारा ओझल न हो जाए। कोई उपाय करो देवि! मुझे अँधेरा दिखाई पड़ रहा है। (बैठ जाता है)

देवदत्त—महाराज सावधान हों।

गौतमी—उठिए प्रभो कुमार आपकी अवहेलना नहीं कर सकते।

शुद्धोदन—यदि तुम लोग मेरी आँखों से देख पाते मेरे विश्वास से समझ पाते। मैं नित्य स्वप्न में देखता हूँ जैसे कुमार को कोई मेरे पास से छीनकर लिए जा रहा है। जैसे वह मेरे पास रहने के लिए नहीं आया। तब जगकर सीधा उसके पलंग के पास दौड़कर जाता हूँ और उसके कक्ष में आसन पर बैठ घण्टों उस अभिनव मधुर मुख की ओर निहारता रहता हूँ। मृगया के दिन से ही कुमार का यह रूप मैं देख रहा हूँ।

गौतमी—मेरे पेट से न उत्पन्न होने पर भी जैसे यह मेरी आत्मा हो।

शुद्धोदन—भगवान, यह भुवन सभी कुमार को प्राण से भी अधिक चाहते हैं।

देवदत्त—महाराज यह हंस कुमार को दे दीजिए।

शुद्धोदन—न जाने क्या होगा न जाने कैसा होगा! क्या इसका कोई भी उपाय नहीं है गौतमी?

गौतमी—किसका महाराज?

शुद्धोदन—मैं देखता हूँ सिद्धार्थ मेरे हाथ से जा रहा है। जो कोई भी कार्य मैं उसके मनोविनोद के लिए करता हूँ उसमें कोई न कोई विशृंखलता आ पड़ती है।

गौतमी—इसका एक उपाय है महाराज!

शुद्धोदन—क्या?

गौतमी—सिद्धार्थ का विवाह? स्त्री संसार में सब से मोहक वस्तु है।

[प्रतिहारी का प्रवेश]

प्रतिहारी—जय हो महाराज की। महामात्य दर्शन किया चाहते हैं।

शुद्धोदन—उन्हें यहीं भेज दो।

प्रतिहारी—जो आज्ञा। (जाता है।)

[महामात्य का प्रवेश]

महामात्य—जय हो महाराज की।

शुद्धोदन—आइए मन्त्रिवर, कुमार के मनोविनोद के लिए क्या कुछ होगा?

महामात्य—अभी कुमार के सामने नाचने गाने के लिए काशी से नर्तकियों का प्रबन्ध हो गया है। विश्वास है अब उनका मन संसार की ओर से विरत न होगा।

शुद्धोदन—गौतमी का विचार है कुमार का विवाह कर दिया जाए।

महामात्य—मैं भी यही कहना चाहता था देव!

[सुकेशी का प्रवेश]

सुकेशी—(घबराकर) रक्षा कीजिए देव!

शुद्धोदन—क्या हुआ सुकेशी?

सुकेशी—कुमार सिद्धार्थ जब से यहाँ से गए हैं बहुत व्यग्र और उदास हैं।

शुद्धोदन—(बेचैन होकर) न जाने भाग्य में क्या लिखा है महामात्य! जाओ और देखो महामात्य आज से ऐसी व्यवस्था करो जिससे कुमार के सामने कोई बूढ़ा अन्धा लंगड़ा काना रोगी तथा मृत न आने पावे।

महामात्य—जो आज्ञा।

[चले जाते हैं]

तीसरा दृश्य

समय—दोपहर

[महाराज शुद्धोदन के प्रासाद का बाहरी भाग। सब कुछ दरबार के ढंग से सजा है। शुद्धोदन का आसन खाली है और उसके दाएँ-बाएँ मन्त्री, महामन्त्री सामन्त तथा अन्य राज-कर्मचारी बैठे हैं। इतने में चोबदार महाराज के आने की सूचना देता है और दो परिचारिकों एवं कुछ अंगरक्षकों के साथ शुद्धोदन प्रवेश करते हैं। सब लोग खड़े होकर अभिवादन करते हैं और यथा-स्थान बैठ जाते हैं।]

शुद्धोदन—(मन्त्री की ओर देखकर) मन्त्रिवर, कुमार के मनोविनोद के लिए जिस नर्तकी को काशी से बुलाया है उसका क्या हुआ?

मन्त्री—महाराज वह आ गई है। अभी उपस्थित हुआ चाहती है।

शुद्धोदन—परन्तु देखो (धीरे से) सिद्धार्थ को यह सब ज्ञात न हो। हमें तो केवल उनके विचारों में परिवर्तन करना है।

मन्त्री—(हाथ जोड़कर) ऐसा ही होगा।

शुद्धोदन—कुमार अभी नहीं आए।

एक परिचारक—आते ही होंगे। आपके पधारने की सूचना उन्हें दी जा चुकी है।

शुद्धोदन—मन्त्री क्या तुम्हारा विश्वास है कि कुमार का हृदय परिवर्तित किया जा सकेगा?

मन्त्री—मुझे विश्वास है महाराज! ये कथाएँ अभी बहुत प्राचीन नहीं हो गई हैं जब ऋषि मुनियों की तपस्याओं को देवराज ने इन्हीं के द्वारा भंग कर दिया है।

महामन्त्री—बालकों का हृदय बड़ा कोमल होता है। उन पर जिस तरह के विचारों का प्रभाव पड़ता है, वे उसी तरह के हो जाते हैं।

मन्त्री—आपका कहना यथार्थ है।

महामन्त्री—विचारों से ही मनुष्य का निर्माण होता है।

सुयोधन—पर देखता हूँ, कुमार के सम्बन्ध में यह बात पूर्ण रूप से लागू नहीं होती।

एक कर्मचारी—उनकी आकृति देखने से ज्ञात होता है वे साधारण पुरुष नहीं हैं।

महामन्त्री—उनके भीतर कोई अलौकिक शक्ति दीख पड़ती है।

सभासद्—प्रत्येक बालक ईश्वर का अंश लेकर उत्पन्न होता है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु संसार के वातावरण एवं माया-मोह में उसका सब प्राचीन रूप तिरोहित हो जाता है और समय पाकर वह पूरा संसारी बन जाता है।

महामन्त्री—फिर भी संगीत के वातावरण का जीवन के निर्माण में बहुत बड़ा हाथ है। वह देखिए कुमार आ रहे हैं।

[एक ओर से कुमार सिद्धार्थ का प्रवेश। सामने के उद्यान की सीढ़ियों से छम-छम की ध्वनि सुनाई देती है, ताल के साथ नर्तकी नीचे उतरती है। कुमार चुपचाप आसन पर बैठ जाते हैं। कुछ ध्यानस्थ से और सब तरफ देखकर वे भी निर्निमेष भाव से उसी नर्तकी की पदगति को देखने लगते हैं। उस नर्तकी के घुंघरुओं से उठने वाली स्वरगति में इतनी तन्मयता बढ़ जाती है कि उस ध्वनि के अतिरिक्त सब ओर शान्ति छा जाती है। अन्त में नर्तकी धीरे-धीरे थककर नाचने लगती है। बहुत देर नाचने के बाद एकाएक गाती है।]

हास भीने, स्मृति, सजल दृग प्राण में पुलकन सँजोए।
ढूँढते किसको न जाने स्वप्न आलिंगन भिगोए
वाष्पों में नाम लिखे—
हँस चले अनुराग जागृत;
दृगों ने बीती कहानी—
की कहानी कही अलक्षित
प्रिय अधर की सिहरनों ने दु व्यथा के श्वास बोए,
हास भीने स्मृति सजल दृग प्राण प्रिय पुलकन सँजोए।

कौन तुम चितवन नशीली
मैं उलझ मन मीत आते ?
और स्वप्नों के दुकूर से
झाँकते फिर भी न आते ?
हास भीने, स्मृति सजल इन स्वप्न आलिंगन भिगोए ।
यह मिली क्यों मधुर सिहरन प्यास साँसों में पिरोए ।
मैं मधुरतम स्वप्न सुख थी—
भूल अपना मन चली हूँ
रूप छवि की तरणि में तब—
भूल अपनापन चुकी हूँ ।
कौन तुम चुपचुप हृदय में पाल मन अजान सोए ?
हास भीने स्मृति सजल इन प्राण में पुलकन सँजोए ।

[गायन समाप्त हो जाता है । उसके बाद भी सभा में उसके वातावरण का प्रभाव रहता है । एकाएक सारी सभा भावन्मातिरेक से अभिभूत हो उठती है और वाह-वाह की ध्वनि से सम्पूर्ण वायुमण्डल गूँज उठता है ।]

पुरोहित—सचमुच जीवन के विकास में सहायक शक्ति है ।

राजकवि—परन्तु काव्य-सृष्टि इस कला से ऊँची वस्तु है महाराज ! नृत्य मूक भावों का अभिनय है गायन स्वर सौन्दर्य है किन्तु काव्य में तो दोनों प्रकार की अभिव्यक्ति होती है । उसमें भाव एवं स्वरों के आरोह अवरोह के साथ जीवन की उन पक्तियों का भी चित्रण होता है जो मनुष्य से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सम्बन्ध रखती हैं ।

पुरोहित—इतना होते हुए भी प्रत्येक कला का अपना अलग अस्तित्व है, भिन्न रूप है कविवर !

राजकवि—महाराज ! पर इनका परस्पर सम्बन्ध भी है । नृत्य कविता की बाह्यानुकृति है संगीत कविता की स्वर-साधना है परन्तु कविता इन दोनों का आवरण पहनकर और भी उज्ज्वल रस प्रदान करती है । इसीलिए उसे 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया है । रस ही जीवन है, और रस ही काव्य ।

सिद्धार्थ—महाराज, कविता एवं संगीत में यदि व्यवहार पक्ष पुष्ट नहीं है तो वह और चाहे जो कुछ हो कला नहीं है। कला जीवन की अभिव्यक्ति का साधन है साध्य नहीं। यह विवेक तो कला में होना ही चाहिए।

महामन्त्री—कुमार बहुत गहरी बात कह रहे हैं महाराज!

राजकवि—कला को जीवन का अंग-विशेष मानना कला की हत्या है। कला सृष्टि का साध्य है समाज का साध्य है। कला इन दोनों के विकास का सम्य होना चाहिए; तभी कला कला है। आज तक हम लोग ऐसा ही मानते आए हैं।

सिद्धार्थ—किन्तु जैसा हम मानते आए हैं वैसा ही बराबर मानते जाना क्या विवेक है राजकवि जी? रोग से पीड़ित वृद्धावस्था से जर्जर, दुर्भिक्ष अथवा भूख से बिलखित को आपकी यह कला कौन-सा सुख देती है यह मेरी समझ में नहीं आता।

युयुत्सु—सम्भवतः कला उन लोगों के लिए नहीं है जो भूखे हैं जर्जर हैं जरा से पीड़ित हैं। प्रत्येक रोग की एक ही औषध नहीं हो सकती युवराज!

सिद्धार्थ—तो आपकी कला जीवन के कौन से अंग को पुष्ट करती है क्या मैं जान सकता हूँ?

युयुत्सु—(आश्चर्य से) कौन से अंग को! वह तो जीवन के विकास में सहायक है।

सिद्धार्थ—किस तरह?

पुरोहित—यह सब क्या परम्परा से ऐसा होता नहीं आ रहा है? तुम राजकुमार हो। तुम्हें ऐसी बातें नहीं सोचनी चाहिए बेटा! राजा और राजकुमार को तो अपनी मर्यादा के लिए इस कला की रक्षा करनी ही पड़ती है। नहीं तो राजा और प्रजा में भेद ही क्या रहेगा?

युयुत्सु—राजधर्मी का यह अंग है युवराज!

महामन्त्री—राजा ईश्वर का अंश होता है!

सिद्धार्थ—ये सब बातें मेरी समझ में नहीं आतीं महाराज! प्रत्येक वस्तु का उपयोग हमारे जीवन से निश्चित होता है। संसार में जो कुछ है वह जीवन के लिए है, मनुष्य के विकास के लिए है मनुष्य के सुख को बढ़ाकर उसे सुखी

बनाने के लिए है।

सुमुख—परन्तु कविता का नहीं वह तो मनोरंजन है। क्या मनोरंजन जीवन के विकास में सहायता नहीं देता ?

सिद्धार्थ—मनोरंजन अपने रूप में कुछ नहीं है। वह किसी अंश में सुख में निहित सुख की वृद्धि कर सकता है वास्तविक सुख उत्पन्न नहीं कर सकता। वाल्मीकि के मुख से जो सबसे पहली कविता निकली वह मनोरंजन के लिए नहीं थी। वह तो एक प्राणी के दुख में सहानुभूति का उद्‌गार था। वही सहानुभूति प्राणीमात्र को चाहिए। यदि आपकी कला—नृत्य संगीत कविता—हमें वह सहानुभूति दे सके तो उसमें कला की सफलता माननी चाहिए।

शुद्धोदन—तुम तो राजकुमार हो बेटा ! तुम्हें ऐसी बातें नहीं सोचनी चाहिएँ।

सिद्धार्थ—सब मुझ से यही कहते हैं कि मैं राजकुमार हूँ पर राजकुमार होने से क्या मैं मनुष्य नहीं हूँ ? मुझमें साधारण जगत के दुख-सुख नहीं हैं ? क्या साधारण के दुख-सुख को देखकर मुझे राजकुमार होने के नाते उन्हें भुला देना चाहिए ? मैं कैसे कहूँ पिताजी कि मुझे ये नृत्य संगीत बिलकुल अच्छे नहीं लगते। हे राजसभा के विद्वानो क्या तुम मुझे ऐसा कोई उपाय बता सकते हो जिसके द्वारा मैं संसार में मनुष्यमात्र को दुख से रहित देख सकूँ ? यदि मैं राजकुमार हूँ तो भी मेरा यह कर्तव्य है कि अपनी प्रजा को सदा सुखी देखूँ।

[सारी सभा सिद्धार्थ के कथन को सुनकर 'धन्य धन्य' कह उठती है। केवल शुद्धोदन के मुख पर उदासी छा जाती है। इतने में पाँच ब्राह्मण सभा में प्रवेश करते हैं। ब्राह्मणों के सिर घुटे हुए, आधा सिर चोटी से घिरा त्रिपुण्ड लगाए, गले में एक सफेद यज्ञोपवीत तथा मोटी रुद्राक्ष की मालाएँ, बाहु, पीठ और पेट आदि पर भस्म लगी हुई धोती और अंगोछा पहने हुए हैं। राजा ब्राह्मणों को आया जान सिंहासन से उठकर खड़ा हो जाता है तथा ब्राह्मणों से बैठने के लिए आग्रह करता है परन्तु ब्राह्मण वैसे खड़े रह कर कहने लगते हैं।]

पहला ब्राह्मण—हम रात-दिन एक करके केवल तप में निमग्न रहने वाले ब्राह्मण हैं राजन् तेरी सभा में आए हैं।

दूसरा ब्राह्मण—तुम्हें मालूम है हमने राज-पाट सब छोड़ दिया है।

शुद्धोदन—क्षमा कीजिए महाराज सेवक उपस्थित है।

तीसरा ब्राह्मण—परशुराम का रक्त अभी बिलकुल शान्त नहीं हो गया है।

चौथा ब्राह्मण—यह समझना चाहिए कि प्रत्येक ब्राह्मण परशुराम है। और परशुराम होने से क्या होता है ब्राह्मण की तो भृकुटि ही संसार का संहार कर सकती है।

पाँचवा ब्राह्मण—हमारे पास मन्त्र का बल है।

शुद्धोदन—दास उपस्थित है। आप लोग बैठ जाइए।

पहला ब्राह्मण—हम बैठ नहीं सकते। हमारा अपमान हुआ है। हमारे धर्म का अपमान हुआ है।

महामन्त्री—ब्राह्मणवर, आप लोग विराजें। महाराज आपकी बातों को सुनने के लिए तैयार हैं।

मन्त्री—बैठ जाइए महाराज! (सब लोग बैठ जाते हैं। केवल एक ब्राह्मण खड़ा रहता है।)

पहला ब्राह्मण—राजन् हम आपसे न्याय कराने आए हैं। कल महामण्डप में हम लोग यज्ञ कर रहे थे बलि के लिए छाग भी नहीं बँधा था कि राजकुमार सिद्धार्थ ने हमारा अपमान किया। हमारे यज्ञ में व्याघात डाल दिया। हमारे यजमान को हटा दिया।

सब—कैसे-कैसे?

दूसरा ब्राह्मण—(खड़े होकर) बलि न होने दी और यज्ञ अधूरा रह गया। (बैठ जाता है।)

तीसरा ब्राह्मण—(खड़े होकर) यजमान ने यज्ञ नहीं किया और वैसे ही यज्ञ छोड़कर चला गया।

चौथा ब्राह्मण—यह ब्राह्मण जाति का अपमान है। धर्म का अपमान है।

शुद्धोदन—सिद्धार्थ क्या आपके यज्ञ में गए थे?

सब ब्राह्मण—नहीं उनका एक व्यक्ति था।

मन्त्री—सिद्धार्थ का व्यक्ति था।

सब ब्राह्मण—हाँ सिद्धार्थ का आदमी देवदत्त ।

मन्त्री—मेरा पुत्र देवदत्त ?

दूसरा ब्राह्मण—यह कहता है—यज्ञ में हिंसा नहीं होनी चाहिए । उसने हमारे यजमान को बहकाया है ।

मन्त्री—देवदत्त मूर्ख है अज्ञ है । आप लोग उसको क्षमा कीजिए ।

सुदीरन—इसमें कुमार का कोई दोष नहीं है । कुमार निर्दोष हैं महाराज !

सिद्धार्थ—(खड़े होकर) देवदत्त ने क्या किया यह मुझे नहीं मालूम किन्तु देवदत्त ने यदि छाग को बलि होने से रोका तो वह मेरी ही प्रेरणा समझी जानी चाहिए महाराज ! मैंने ही देवदत्त को यह शिक्षा दी है ।

सभा के लोग—यह शिक्षा अनुचित है । धर्म में हस्तक्षेप करने का कुमार को कोई अधिकार नहीं है ।

ब्राह्मण—राजा को भी । राजा धर्म की रक्षा के लिए है विनाश के लिए नहीं । यह महा अनुचित हुआ है ।

महामन्त्री—यज्ञ में दी गई बलि हिंसा नहीं कही जा सकती ।

सिद्धार्थ—हिंसा सब जगह हिंसा ही है । चाहे वह यज्ञ में हो अथवा और कहीं । धर्म हिंसा का उपदेश नहीं देता । धर्म जीवन है मृत्यु नहीं । यह हमारा अज्ञान है धर्म का विकृत रूप है । ऐसे धर्म को हमें नहीं मानना चाहिए ।

सारी सभा—यह घोर पाप है । धर्म के सम्बन्ध में कुमार को कुछ भी कहने का अधिकार नहीं है । उसे प्रायश्चित्त करना होगा ।

सब ब्राह्मण—सिद्धार्थ दोषी है । उसे दण्ड भोगना ही पड़ेगा । धर्म का अपमान असह्य है ।

सिद्धार्थ—मैं सब प्रकार का दण्ड भोगने को तैयार हूँ किन्तु यज्ञ हिंसा मुझे सह्य नहीं है ।

सब ब्राह्मण—स्वीकृति भी पाप है । राजन् हम आपसे न्याय चाहते हैं । न्याय कीजिए ।

मन्त्री—इतना होते हुए भी मूलदोषी देवदत्त है, सिद्धार्थ नहीं ।

सिद्धार्थ—नहीं यदि वह दोषी है तो मैं दोषी हूँ, देवदत्त ?

सभा के कुछ लोग—न्याय कीजिए, न्याय कीजिए। धर्म ऐसा अनादर नहीं सह सकता।

[देवदत्त का प्रवेश]

सब ब्राह्मण—नहीं है नहीं है। धर्म का विध्वंस करने वाला।

देवदत्त—हिंसाहीन धर्म ही सत्य धर्म है। इस धर्म की रक्षा के लिए मैं सब प्रकार का दण्ड सहने को उद्यत हूँ महाराज!

सिद्धार्थ—देवदत्त ने कोई पाप नहीं किया। इसलिए उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता। यदि उसे दण्ड देना है तो मुझे दण्ड दीजिए। मैं भोगने को तैयार हूँ।

सभा में एक आदमी—दोनों दण्डनीय हैं।

दूसरा आदमी—नहीं देवदत्त को दण्ड देना चाहिए।

तीसरा आदमी—मूल प्रेरक होने के नाते कुमार दोषी हैं।

पुरोहित—मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। पर देखता हूँ अब मैं हिंसा को रोकना पाप अवश्य है। धर्म में व्यवधान करने का अधिकार किसी को भी नहीं है। किन्तु देवदत्त के विरोध करने पर भी वह निर्दोष है।

मन्त्री—और राजा एवं राजकुमार निष्पाप हैं।

शुद्धोदन—(खड़े होकर) मैं देखता हूँ कि सिद्धार्थ दोषी है। और मैं सिद्धार्थ के बदले (चुप हो जाता है तथा आँसू छलछला आते हैं फिर बोलते हैं) मैं सिद्धार्थ की जगह ब्राह्मणों का दण्ड सहने को तैयार हूँ। सिद्धार्थ बालक है। (बैठ जाते हैं)

महामन्त्री—ब्राह्मणो! दोष स्वीकार करना भी एक प्रकार का प्रायश्चित्त है। बालक होने के नाते सिद्धार्थ अपराधी नहीं है इसके अतिरिक्त । (सिद्धार्थ बार-बार बोलने को खड़े होते हैं पर बोलने का समय न मिलने के कारण बैठ जाते हैं) इसके अतिरिक्त (इधर-उधर देखकर) हाँ तो मैं कह रहा था इसके अतिरिक्त महाराज ने स्वयं सिद्धार्थ का दोष अपने ऊपर ले लिया है। इसलिए राजा होने के नाते वे भी निर्दोष हैं। क्या आप चाहेंगे महाराज को दण्ड दिया जाए?

सिद्धार्थ—(उठकर) मैं   ।

महामन्त्री—प्रिय ब्राह्मणो एवं सभासदो मुझे इस बात का दुःख है कि आपके यज्ञ में विघ्न डाला गया ।

[जनपाल का प्रवेश]

जनपाल—दुहाई महाराज की मैंने सुना है कि मकारण ही कुमार देवदत्त का वध किया जा रहा है इसलिए मैं आया हूँ । मैं विश्वास करता हूँ यज्ञ में हिंसा नहीं होनी चाहिए । यह कुमार देवदत्त की शिक्षा है जिसने मेरी आँखें खोल दी है । महाराज मुझे दण्ड दीजिए, मैं सहने को तैयार हूँ । (सिर झुकाकर बैठ जाता है)

एक ब्राह्मण—नास्तिक सेठ सभा में उपस्थित है । धर्म के घातक इस सेठ को दण्ड देना चाहिए ।

एक सभासद्—इसका यह अपराध अमार्जनीय है ।

दूसरा सभासद्—यह पापी नहीं है ।

तीसरा सभासद्—यही दोषी है ।

सिद्धार्थ—महाराज मैं प्रार्थना करता हूँ कि यह पुरुष निर्दोष है । हिंसा किसी भी तरह धर्म नहीं हो सकती ।

महामन्त्री—महाराज की आज्ञा है और मैं समझता हूँ कि पूर्ण विचार के साथ न्याय किया जाए । धर्म का तत्त्व बड़ा गहन है । यह साधारण मनुष्यों की बुद्धि से बाहर है इसलिए इसका निर्णय कल पर छोड़ा जाता है । कल न्यायागार में न्यायाध्यक्ष का जो निर्णय होगा वही प्रजाजनों को मान्य होगा ।

पुरोहित—इस समय सभा समाप्त होती है ।

[परदा गिरता है]

चौथा दृश्य

[उद्यान में शोभा और उसकी दो सखियाँ विद्यमान हैं। शोभा बैठी है एक झूले पर—सामने बिछे हुए आसनों पर वाद्य साधनों के साथ सखियाँ बैठी हैं। शोभा कुछ उन्मन है सखियाँ उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रही हैं। सब कन्याओं की वेश-भूषा सुन्दर, कटि के नीचे रेशमी वस्त्र, बाल जूड़ों में और फूलों से गुँथे हुए। एक के सिर पर एक बेनी है दूसरी के दो। शरीर पर आभूषण। शोभा सत्रह साल की उभरते हुए यौवन की शान्त गम्भीर आकृति की वयस्क बाला है। उसके केशपाश फूलों से गुँथे हुए, लम्बा सुडौल सुन्दर सुकुमार-कृति गेहुँआ रंग दुबली देहयष्टि, विशाल गहराई लिए कर्ण विस्फारित बैठी सोच रही है। हाथ में एक फूलों की माला है जिसके एक-एक फूल को मानों ध्यान से देख रही है। कभी ध्यानस्थ हो जाती है कभी सखियों की ओर देखने लगती है। सखियों के नाम हैं चारुहासिनी और विद्युत्माला।]

चारु—राजकुमारी आज का समाचार तुमने सुना ?

विद्युत्—तुम जो कुछ समाचार लेकर आती हो उसमें राजकुमारी के सुनने योग्य कितना रहता है, यह हम जानती हैं।

चारु—कलिका के कुसुम बनने में भ्रमर का गुंजन ही अधिक रहता है समुद्र की तरंगों में शशि के हास की तरह तुम्हारी दशा है।

विद्युत्—मेरा आशय यह है कि उसमें तुम्हारी इच्छाओं की प्रतिध्वनि ही अधिक होती है तुम्हारे यौवन के उभार का चमत्कार ही अधिक होता है। हृदय की अतृप्त अभिलाषा ही अधिक बोलती है।

चारु—बाहर से भले होने का कोई स्वाँग न भर सके तो भीतर भी क्या उसे वैसा कहा जाएगा ?

विद्युत्—जिसने जीवन में कपट न किया हो उसमें बाहरी बनावट भी नहीं होती।

चारु—अर्थात्।

विद्युत्—तुम्हारे भीतर उठने वाले प्रणय-धूम में राजकुमारी की अपेक्षा

तुम्हें अपनी ओर देखने को अधिक तन्मय कर दिया है। यदि तुम फूलों की कविता सुनती हो कलियों से अपनी हंसी की तुलना करती हो, मृग से आँखें मिलाकर उनकी विशालता नापती हो। इसीलिए कहा कि तुम जो समाचार लाती हो उसमें तुम्हारी ही अभिलाषा बेचती होती है।

गोपा—सुन्दर।

चारु—और तुम जो कुछ कहती हो वह दूसरों की विरह-अग्नि में जला हुआ दूसरों के स्वप्नों में पला हुआ दूसरों का ही होता है मानों उन सबमें तुम्हारा अपना कुछ भी नहीं है। बेचारी भोली निरपराध बालिका मिन्दुम्म।

विद्युत्—इन्द्र ने शची को सर्वस्व समर्पण करने और अमरावती का राज्य दे देने के बाद भी देखा कि उसका मुख सदा उदास रहता है। उसके हृदय में सदा एक ही तीव्र अभिलाषा जागती रहती है ।

चारु— कि विद्युत् की मादकता तीव्रता को एक घूंट में पान कर जाए।

विद्युत्—कामदेव की स्त्री रति के बाद उसे क्या बनना शेष रहा होगा इसकी कल्पना चारु के अतिरिक्त और कौन कर सकता है। (गोपा से) तुम बताओ।

गोपा—मैं क्या जानूं यही होगा इन्द्र उसके चरणों के जावक से अपने मुकुट को सदा अभिषिक्त करता रहे।

विद्युत्—नहीं स्त्री यह नहीं चाहती।

चारु— कि वह क्यों न और अधिक सुन्दर हो सकी।

गोपा—सुन्दर तो वह है, फिर शची ऐसा तो चाह नहीं सकती।

विद्युत्—हां सुन्दरता की सीमा नहीं की जा सकती। ऐसा सोचना तो कदाचित् शची के लिए ठीक न होगा। फिर भी मैं देखती हूं शची के हृदय में एक इच्छा थी।

गोपा—स्त्री ही इसे जान सकती है कि शची क्या चाहती थी।

चारु—साधारण स्त्री नहीं विद्युन्माला जैसी।

गोपा—जिसके हृदय हो।

गोपा—(संकोच भरे नेत्रों से सिद्धार्थ को देखकर। स्वगत) चित्र आकृति मिलती है। क्या ये ही तो नहीं हैं?

विद्युत्—यह महाशय भूलकर आ गए हैं इन्हें क्षमा कीजिए।

चारु—इसका क्या प्रमाण कि ये बिना भूले नहीं आए हैं!

विद्युत्—दोनों ही हो सकते हैं। कहिए?

सिद्धार्थ—मेरे साथ मेरे एक मित्र भी थे।

चारु—यह तो निश्चय है कि वे आपके शत्रु नहीं हो सकते।

विद्युत्—हाँ इस उद्यान में भूलने और भुलानेवाला शत्रु नहीं हो सकता

सिद्धार्थ—क्या मैं बाहर जाने का मार्ग पूछ सकता हूँ।

चारु—इस उद्यान से बाहर जाने का मार्ग भूला हुआ यदि स्वयं न ढूँढे तो ।

विद्युत्—तो उसका निकल सकना असंभव है।

सिद्धार्थ—आपने मुझे एक शिक्षा सिखाई है। (सोचने लगते हैं।)

नई सखी—हमारी सखी पूछती हैं आप हैं कौन?

विद्युत्—अर्थात् आप किस देश में रहते हैं?

चारु—अर्थात् आपके देश का क्या नाम है?

विद्युत्—और आपका क्या नाम है?

नई सखी—आपके माता पिता का क्या नाम है?

सिद्धार्थ—(हँसकर) एक साथ इतने प्रश्नों का उत्तर तो मैं न दे सकूँगा।

चारु—किन्तु हमारे देश में एक साथ इतने प्रश्नों का उत्तर न दे सकने वाले को आप जानते हो हैं क्या दण्ड मिलता है?

सिद्धार्थ—वह दण्ड मैं भोगने के लिए प्रस्तुत हूँ।

चारु—इससे यह सिद्ध हुआ कि आप इस तरह के दण्ड कई बार भोग चुके हैं। कहिए ।

विद्युत्—कहिए आप क्या सोच रहे हैं?

सिद्धार्थ—यही कि क्या यह भी यौवन है?

—— ... आप दार्शनिक भी हैं क्या?

विद्युत्—तो क्या आप समझते हैं यह जीवन नहीं है ?

सिद्धार्थ—आपकी इस (गोपा की तरफ) सखी का नाम मैं पूछ '' ।

चारु—पर पहले आप अपना नाम तो बतलाइए !

विद्युत्—यह दूसरा अपराध है कि एक तो आप किसी के उद्यान में बिना उसकी आज्ञा के आ गए और उस पर स्वामी का नाम पूछने की धृष्टता करते हैं । आपको दण्ड सहने के लिए तैयार हो जाना चाहिए ।

सिद्धार्थ—किस प्रकार का दण्ड मुझे सहना होगा ?

चारु—हमारे यहाँ घुसकर आ जाने वाले व्यक्ति को जो दण्ड दिया जाता है उसकी व्यवस्था मनुष्य को देखकर की जाती है । पहले आप अपने नेत्र बन्द करेंगे ।

सिद्धार्थ—फिर ।

चारु—हाथ जोड़कर क्षमा माँगनी होगी । और कहना होगा कि देवि (वैसा अभिनय करती है ।)

सिद्धार्थ—अच्छा देखता हूँ आप लोग कुशल नायिका चतुर नागरिका ही नहीं परिहास-प्रवीणा भी हैं ।

चारु—(गम्भीरता का अभिनय करके) आप इसको परिहास समझते हैं ?

विद्युत्—यह आपका तीसरा अपराध है । अब आपको हमारी राजकुमारी के सम्भागार में तीन अपराधों के दण्ड-निर्णय की प्रतीक्षा करनी होगी ।

चारु—उस समय तक आप इस उद्यान से बाहर नहीं जा सकते ।

सिद्धार्थ—सिद्धार्थ आपकी सखी के सामने सब अपराधों का दण्ड सहने को प्रस्तुत है ।

गोपा—सिद्धार्थ सिद्धार्थ (चारों कन्याएँ विस्मित, स्तब्ध विचलित सी हो जाती हैं और सिद्धार्थ बैठकर आँखें बन्द कर लेते हैं । सखियाँ सब चली जाती हैं, केवल गोपा रह जाती है) उठिए सिद्धार्थ गोपा आपसे क्षमा माँगती है । (हाथ जोड़कर बैठ जाती है ।)

सिद्धार्थ—(आँखें खोलकर देखते हैं, गोपा हाथ जोड़े खड़ी है और मर्मभेदी दृष्टि से सिद्धार्थ की ओर देख रही है । (हँसकर) दण्ड दीजिए न ?

गोपा—आज मेरी चिर अभिलाषाएँ पूर्ण हुईं सिद्धार्थ ! जैसा मैंने आपके सौन्दर्य रूप के सम्बन्ध में सुना था' गोपा को क्षमा कीजिए।

सिद्धार्थ—(पास आकर) गोपा मालूम होता है पिता ने' (सिद्धार्थ सिद्धार्थ की आवाज आती है) अच्छा' जाता हूँ। (तत्पश्चात् गोपा को देखकर) देवदत्त ! कहाँ हो ?

गोपा—(गोपा अतृप्त दृष्टि से देखती रहकर) यही मार्ग है जो कामक-द्वार की तरफ जाता है।

सिद्धार्थ—(धीरे से) गोपा !

गोपा—(उसी स्वर से) सिद्धार्थ कृतार्थ हुई।



पाँचवाँ दृश्य

समय—सायंकाल

[विवाह के बाद गोपा पहले दृश्य में दिखाए उद्यान में स्फटिक शिलातल पर बैठी है। समय की उज्ज्वलता परिस्थिति की मादकता से गोपा प्रसन्न है। पास ही मृग का एक छौना चौकड़ियाँ भर रहा है। हाथ में वीणा लिए गोपा गा रही है। गीत की ध्वनि सुनते ही मृग पास आकर खड़ा हो गया है और वीणा को बार-बार सूँघने लगता है। सिद्धार्थ चुपचाप छिपे हुए गोपा को देख रहे हैं।]

गीत

प्रिय पग बढ़ाती चल—
स्नेह जीवन सुमन के दल
साधना के सजल नर्तन।
कुसुम के उल्लास से मधुमास के उच्छ्वास चंचल।
धड़कन जगाती चल,
प्रिय पग बढ़ाती चल।

विरह धीमे—स्वर सजीले,
सिन्धु में सागर लमी से
रोम गोपा पर पुलक के स्वर सजाती चल।
नव गीत गाती चल
प्रिय पथ बनाती चल
प्रिय पथ सजाती चल।

[गोपा के गीत की ध्वनि इतनी मादक और मोहक हो जाती है कि संपूर्ण उद्यान और दिशाएँ मानों चुप होकर गीत से प्रतिध्वनित हो उठती हैं। सिद्धार्थ अचानक ही गोपा के पास आकर खड़े हो जाते हैं किन्तु गोपा गीत की तन्मयता, बेसुधी में मग्न है। इस कारण सिद्धार्थ की पदचाप सुनकर भी वहीं ही बैठी रहती है। उसकी तन्मयता को देखकर—]

सिद्धार्थ—(मुग्ध से होकर) कितना सुन्दर गीत है। गोपा ?

गोपा—(एकदम जागकर) प्राणनाथ आप !

सिद्धार्थ—बहुत सुन्दर गाती हो गोपा।

गोपा—(लज्जा से सिमटी सी) कुछ नहीं मन नहीं लग रहा था। (उठकर खड़ी हो जाती है।)

सिद्धार्थ—बैठो (स्वयं बैठकर) कितना पवित्र हृदय है तुम्हारा। कितना अनुपम सौन्दर्य ! तुम्हें पाकर मैं धन्य हो गया गोपा ! (गोपा सिद्धार्थ का मुँह बन्द करके।)

गोपा—ऐसा न कहिए प्राणनाथ !

सिद्धार्थ—नहीं गोपा (गोपा का हाथ अपने हाथों में लेकर) इसमें अत्युक्ति कुछ भी नहीं है। साधारण जीवन के पथ की सफलता के लिए नर-नारी जो कुछ चेष्टा करते हैं उसके अनुसार हम लोग बहुत सुखी हैं। बहुत आनन्दित हैं।

गोपा—(आश्चर्य से) और असाधारण जीवन के लिए ?

सिद्धार्थ—(उसी मुद्रा से) असाधारण के लिए कुछ न पूछो गोपा ?

गोपा—क्यों ?

सिद्धार्थ—इसलिए कि सिद्धार्थ स्वयं कुछ नहीं जानता। वह न अपने को जानता है न पर को।

गोपा—प्राणनाथ को कोई आन्तरिक पीड़ा है क्या? गोपा सर्वस्व देकर भी यदि प्रियतम की चिन्ता दूर कर सके। (सिद्धार्थ उसी मुद्रा से देखते रहते हैं।) कहिए, चुप क्यों हैं। पत्नी का कर्तव्य है कि पति को हर प्रकार से सुखी रखे मेरा यह सब कुछ आपके चरणों पर अर्पित है पतिदेव? (चरणों पर गिर जाती है।)

सिद्धार्थ—(गोपा के शरीर-स्पर्श से चेतना प्राप्त करके) हैं हैं, यह क्या करती हो। उठो उठो गोपा। मेरा कष्ट मेरी चिन्ता जाने दो। (रुककर) अच्छा तुम वह गीत तो सुनाओ जो सुकेशी से उस दिन तुमने सुना था।

गोपा—(स्वस्थ होकर) कौन सा?

सिद्धार्थ—वही—'कौन है श्रृंगार करता'।

गोपा—जो आज्ञा (वीणा लेकर गीत गाती है। सिद्धार्थ ध्यानस्थ होकर सुनते रहते हैं। गीत समाप्त होने पर गोपा देखती है पतिदेव ध्यानमग्न हैं। बहुत देर देखती रहकर) पतिदेव पतिदेव प्राणनाथ। जागो जागो नाथ। शब्द सुनकर सखियाँ दौड़कर आ जाती हैं।

सब—क्या है क्या हुआ?

सुकेशी—युवराज को यह गीत मत सुनाओ देवी! इस गीत को सुनकर न जाने किस ध्यान में तन्मय हो उठते हैं कुमार! न जाने किस बुरी घड़ी में यह गीत मैंने रचा था।

गोपा—युवराज की इच्छा थी उनकी आज्ञा थी सुकेशी।

सुकेशी—अवश्य यह गीत उन्हें बड़ा प्रिय है। किन्तु विषपायी को विष की तीव्रता के समान यह इनकी सब-सुध भी भुला देता है।

गोपा—अब क्या हो।

सिद्धार्थ—(चेतना प्राप्त करके) कुछ भी नहीं गोपा मैं तुम्हारे इस गीत को सुनकर इतना तन्मय हो गया कि मुझे कुछ भी सुध-बुध नहीं रही। (गोपा

देखती है सिद्धार्थ के चेहरे पर इतना तेज तथा शान्ति विराजमान है कि वह उनके सामने अभिभूत सी हो गई है। इसलिए एकदम उनके चरणों पर गिर जाती है। सखियाँ चली जाती हैं।)

गोपा—प्राणनाथ गोपा (भय से व्याकुल और अनागत की चिन्ता से विह्वल होकर) आपके चरणों की रति चाहती है। यही वरदान दीजिए प्रभो!

सिद्धार्थ—गोपा स्वस्थ हो। मैं जीवन की कटुता से घबरा उठा हूँ। मैं सोचता हूँ यह संसार क्या है?

गोपा—हम लोग क्या ससार से भिन्न हैं? यह सुख यह सौन्दर्य यह राशि-राशि उल्लास क्या संसार से भिन्न है। आप इसे क्यों नहीं देखते?

सिद्धार्थ—और यह मृत्यु, यह रोग यह पीड़ा यह दरिद्रता यह अस्थिरता क्या है?

गोपा—जीवन बहुत बड़ा है। मकान में यदि शयन-कक्ष है उद्यान है सब प्रकार का विलास है तो नाली भी तो रहेगी।

सिद्धार्थ—(चुप रहकर) हूँ।

गोपा—कहिए प्राणनाथ चुप क्यों हो गए?

सिद्धार्थ—परन्तु मनुष्य की आशा में निराशा उद्योग में असफलता भाग्य में विपरीतता यह सब क्यों मनुष्य के पीछे पड़ी है। यही तो सोचता हूँ। शास्त्र कहते हैं ईश्वर सब कुछ करता है। वह ईश्वर कैसा है जो अपने बच्चों को दुख देता है। नहीं वह ईश्वर नहीं है। कोई भी नहीं है। परन्तु क्या है?

गोपा—यह मृगछौना कितना सुन्दर है। कितना चंचल? क्या इसे किसी प्रकार का कष्ट है?

सिद्धार्थ—तुम्हें नहीं मालूम गोपा! एक दिन इसकी माँ ने किस प्रकार छटपटाकर प्राण दिए थे। उस समय की अवस्था को याद करके मेरे प्राण काँप उठते हैं।

गोपा—(निरुपाय होकर) मैं कुछ भी नहीं जानती नाथ!

[देवदत्त का प्रवेश। गोपा चली जाती है]

देवदत्त—सन्थागार ने निर्णय दे दिया युवराज?

सिद्धार्थ—क्या ?

देवदत्त—मेरे पक्ष में। क्षुद्र शक्ति नहीं होनी चाहिए। सेठ का विश्वास सत्य है।

सिद्धार्थ—किसने निर्णय दिया।

देवदत्त—महाराज ने फैसला किया यद्यपि अन्य लोग इसके विपक्ष में थे।

सिद्धार्थ—निर्णय देते हुए महाराज ने क्या कहा ?

देवदत्त—कहा कि न्याय-अन्याय मैं कुछ भी नहीं जानता। विपक्ष में निर्णय देने से सिद्धार्थ को दुख होगा इसलिए—

सिद्धार्थ—ठहरो ठहरो। यह अन्याय हुआ।

देवदत्त—कैसे ?

सिद्धार्थ—पिता ने पुत्र-स्नेह पालन किया है।

देवदत्त—पर निर्णय तो सत्य पक्ष में हुआ है !

सिद्धार्थ—पर विश्वासपूर्वक यह निर्णय नहीं हुआ। पिता के हृदय में संशय है विचिकित्सा है। वे मेरे स्नेह से अभिभूत होकर ऐसा निर्णय कर बैठे हैं। यह ठीक नहीं है। विश्वास दिलाना होगा। तर्क बदलना होगा। नई दृष्टि से जीवन को परखना होगा। मृत्यु का दुख का ठीक निदान ढूँढना होगा। मैं नगर भ्रमण करना चाहता हूँ देवदत्त !

देवदत्त—यह कौन बड़ी बात है युवराज प्रबन्ध हो जाएगा।

[शुद्धोदन का महामन्त्री के साथ प्रवेश]

सिद्धार्थ—(उठकर अभिवादन करते हुए) प्रणाम करता हूँ पिताजी।

शुद्धोदन—बैठो बैठो कुमार ! मन्त्रीजी उद्यान कुछ उजड़ा हुआ दीख पड़ता है। नए-नए पुष्प और लगाने चाहिए। शिल्पकारों से कहो कि उद्यान को अच्छे ढंग से सजा दे।

मन्त्री—जी !

शुद्धोदन—संगीत नृत्य वादन का सब सामान यहाँ उपस्थित रहना चाहिए। राजनर्तकी यहाँ है, आज इसी उद्यान में हम उसका नृत्य देखना चाहते हैं। सिद्धार्थ भी यहीं रहेंगे।

सिद्धार्थ—पिताजी मैं नगर भ्रमण करना चाहता हूँ।

शुद्धोदन—(चौंककर) क्यों बेटा !

सिद्धार्थ—मेरी इच्छा ऐसी ही है।

शुद्धोदन—राजकुमारों को बार-बार नगर में नहीं जाना चाहिए। प्रजा जन को कष्ट होता है।

सिद्धार्थ—मैं प्रजाजन को उनके वास्तविक रूप में देखना चाहता हूँ।

मन्त्री—युवराज प्रजाजन आपके पुत्र के समान हैं। जैसे पिता के सामने पुत्र को अस्तव्यस्त रूप में छोड़कर विनीत भाव से उपस्थित होना होता है इसी तरह हर समय प्रजा के सम्मुख राजा का उपस्थित होना उन्हें कष्टकर है।

शुद्धोदन—तुम राजकुमार हो उनके भाग्यविधाता हो। बार-बार उनसे मिलते रहने पर कभी वे उद्दत हो सकते हैं।

सिद्धार्थ—मैं प्रजा की वास्तविक दशा देखना चाहता हूँ।

शुद्धोदन—हाँ हाँ यह तो राजा का प्रधान कर्तव्य है पर मेरे रहते अभी तुम्हें इन बातों की चिन्ता न करनी चाहिए, फिर भी मन्त्रिन् राजकुमार की इच्छा पूर्ण होनी चाहिए। सजो राजधानी आज से युवराज का नगर प्रवेश हो।

मन्त्री—जो आज्ञा (सिद्धार्थ कुछ सोचते हुए निकल जाते हैं)।

शुद्धोदन—युवराज को देखकर मुझे बहुत संशय हो उठता है मन्त्रिन् !

मन्त्री—युवराज साधारण राजकुमार नहीं हैं महाराज। यह कोई अलौकिक विभूति हैं। इनकी मुखाकृति हाव भाव असाधारण हैं महाराज !

शुद्धोदन—(चिन्तित होकर) जितना ही इनका मन बहलाने का मैं यत्न करता हूँ उतना ही यह और उदासीन होते जाते हैं। (इधर-उधर देखकर) देवदत्त सुकेशी को बुलाओ। (देवदत्त जाता है) बड़ी चिन्ता रहती है मन्त्री। मेरा पुत्र मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा है। एक दिन स्वप्न में मैंने देखा— ओह मत पूछो।

मन्त्री—स्वप्न सत्य नहीं होता महाराज !

शुद्धोदन—(चुप रहते हैं। सुकेशी आती है) युवराज की अब क्या अवस्था है सुकेशी !

सुकेशी—गोपा देवी और मेरे निरन्तर प्रयत्न करते रहने पर भी उनमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो रहा है। सदा ही वे कुछ-न-कुछ सोचा करते हैं।

शुद्धोदन—गोपा से उनका व्यवहार !

सुकेशी—बहुत सुन्दर बहुत सभ्य !

शुद्धोदन—गोपा पर युवराज प्रसन्न तो रहते हैं !

सुकेशी—उन्हें कभी किसी पर क्रुद्ध होते तो मैंने देखा ही नहीं।

शुद्धोदन—मैं पूछता हूँ गोपा से वह प्रेम करते हैं ?

सुकेशी—जी ! गोपा रानी के साथ वे बैठते हैं, बात करते हैं हँसते हैं परन्तु गम्भीरता उनमें बराबर बनी रहती है महाराज !

शुद्धोदन—संगीत नृत्य उनको कैसा लगता है ? मैं कुछ नहीं जानता जिसमें युवराज का मन लगे वह काम होना चाहिए। समझी !

सुकेशी—हम लोग सदा उनकी प्रसन्नता का ध्यान रखती हैं। इसके अतिरिक्त न जाने क्यों (चुप रहती है)।

शुद्धोदन—कहो।

सुकेशी—हम प्राणपण से उन्हें प्रसन्न रखने में अपनी सार्थकता समझती हैं।

शुद्धोदन—देखो सुकेशी मेरा और कोई नहीं है। मेरी आँखों का प्रकाश मेरे हृदय का बल यह सिद्धार्थ है। मुझे इसके सामने न्याय-अन्याय धर्म-अधर्म ज्ञान-विज्ञान कुछ भी नहीं सूझता। मेरे जीवन का एकमात्र सूत्र यह कुमार है। (डर से आँखों में विकृति आ जाती है) उस दिन का स्वप्न नहीं नहीं करूँगा। (स्वस्थ होकर) और जो-जो उपाय हैं वह सब करने होंगे। मन्त्रीजी ! वे सब उपाय करो। देखो मैं घबरा रहा हूँ। मेरा जीवन नष्ट न हो जाए।

[शुद्धोदन गिरने लगते हैं। सब लोग उनको सँभालकर ले जाते हैं।]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[रंगमंच के ऐसे समय में दो भाग होंगे। भीतर के भाग में राजकुमार का रथ इस प्रकार हिल रहा हो जिससे मालूम हो रथ चल रहा है। उसके साथ ही कुछ ऊँचे पर्दे पर दुकानों के दृश्य अंकित होंगे। लोग विक्रयार्थ वस्तुएँ सजाए बैठे होंगे। सामने एक सड़क का दृश्य होगा जिस पर लोग आते-जाते दिखाई देंगे। सिद्धार्थ के नगर-प्रवेश के कारण नगर सजा हुआ दिखाई दे रहा है। कहीं भी कोई दरिद्र बीमार, मैले कुचैले वस्त्रोंवाला व्यक्ति न दिखाई दे इसकी विशेष व्यवस्था की गई है।]

सैनिक—ऐ, सुनते हो।

पहला नागरिक—जी!

सैनिक—तुम्हारे वस्त्र फटे क्यों हैं? हटो भाग जाओ।

पहला नागरिक—क्या करूँ महाशय मैं दरिद्र हूँ।

सैनिक—भागो तुम्हें मालूम नहीं है युवराज की सवारी आ रही है।

दूसरा सैनिक—(डण्डा फटकारकर) देखो जी! सुना युवराज की सवारी आ रही है। तुमने दुकान नहीं सजाई! सजाओ दुकान।

दूसरा नागरिक—महाशय भोजन तो मिलता ही नहीं दुकान क्या सजाऊँ?

दूसरा सैनिक—नहीं नहीं सजाओ। (भाग निकल जाता है)

तीसरा सैनिक—ऐ, बूढ़े इधर कहाँ जाते हो?

तीसरा नागरिक—(आश्चर्य से) क्यों क्या चलूँ भी नहीं। भाई थोड़े दिन का अतिथि हूँ! जाने दो।

तीसरा सैनिक—नहीं इधर से नहीं जा सकते। जानते नहीं हो युवराज नगर देखने आ रहे हैं।

सैनिक—दूर हट ! (पकड़ता है)

सिद्धार्थ—ठहरो यह कौन है ?

दरिद्र—युवराज मेरे पापों का अन्त कब होगा ?

छन्दक—तुम क्या चाहते हो ?

दरिद्र—जो मैं चाहता हूँ वह मुझे नहीं मिलता।

सिद्धार्थ—क्या चाहते हो ?

दरिद्र—मुझे इस बात का दुःख है कि मैं दुःखी क्यों हूँ।

एक नागरिक—युवराज ! इस व्यक्ति ने विलास में सब कुछ खो दिया। इसकी स्त्री इस दुराचारी को छोड़कर चली गई। पिता ने मरते समय इसको अपार सम्पत्ति दी थी किन्तु आज यह भीख मांग रहा है।

छन्दक—इसे यहाँ किसने आने दिया ?

सिद्धार्थ—इसने अमृत की आशा में विष पान किया है। आह ! अज्ञान ही दुःखों का कारण है। (लोग उसे हटा देते हैं। एक रोगी बैसाखी के सहारे आता है किन्तु भीड़ में धक्के से और से करहकर गिर पड़ता है।) देखो देखो यह कौन है ?

[सामने लाया जाता है]

एक नागरिक—यह रोगी है युवराज !

रोगी—हाय मर रहा हूँ दर्शन करने आया था। मैं भी पहले आप ही की तरह स्वस्थ था किन्तु प्रमाद ने प्राण तोड़ दिए। (खांस से दम घुटने लगता है। लोग हटा देते हैं।)

सिद्धार्थ—कितना दुःख है इस व्यक्ति को। (उदास भाव से रथ पर बैठ जाते हैं। इतने में एक अर्थी आने की आवाज—राम नाम सत्य है, अर्थी आ जाती है।) छन्दक यह क्या है ?

छन्दक—कुछ नहीं युवराज !

एक नागरिक—(सिसककर) मर गया ! अभी कल तक तो अच्छा था।

सिद्धार्थ—क्या यह मर गया है ?

छन्दक—हाँ युवराज !

सिद्धार्थ—मैं देखना चाहता हूँ ।

छन्दक—क्षमा कीजिए, इसको देखना ठीक नहीं है ।

सिद्धार्थ—(सोचते हुए) मनुष्य मर भी जाता है । क्या यही मृत्यु है । छन्दक रथ लौटा ले चलो । मैं आगे नहीं जाऊँगा ।

छन्दक—युवराज वसन्तोद्यान तो सामने है । वहाँ बहुत सुन्दर दृश्य युवराज देखेंगे ।

सिद्धार्थ—नहीं छन्दक मैं आगे नहीं जाऊँगा । लौटो !

छन्दक—पीछे बहुत भीड़ आ रही है । महाराज की आज्ञा थी कि आपको वसन्तोद्यान दिखाया जाए । वहाँ आपके स्वागत का विशेष आयोजन किया गया है राजकुमार !

सिद्धार्थ—नहीं छन्दक ! मैंने बहुत देखा । जो देखा है वही वास्तव है । वही वस्तुतः मनुष्य है, वही संसार है । जो तुम मुझे दिखाना चाहते हो वह भ्रान्ति है । बनावटी है । चलो !

[छन्दक रथ लौटा ले जाता है । सिद्धार्थ चिन्तामग्न हो जाते हैं]



दूसरा दृश्य

कपिलवस्तु का सभागार

[विद्वान् ब्राह्मण लोग तिलक लगाए, बड़े-बड़े धर्मशास्त्र के ग्रन्थ सामने रखे बैठे हैं । एक उच्च आसन पर राजा शुद्धोदन का स्थान खाली है । राजा के सिंहासन के बराबर धर्माध्यक्ष बैठे हैं । सेवक यथास्थान खड़े हैं । सिंहासन के समीप सिद्धार्थ का आसन है । सिद्धार्थ भी बैठे हैं । प्रार्थी लोग यथास्थान खड़े हैं ।]

एक प्राणी—महाराज ! इस शूद्रक ने मेरे घर में प्रवेश करके मेरा घर अपवित्र कर डाला। मेरे निषेध करने पर भी यह दुष्ट घर में घुस आया और मेरा घर कलुषित कर दिया।

(प्रतिवादी) शूद्रक—महाराज मैं व्यर्थ ही इसके घर में नहीं घुसा। बाजार के कुछ व्यक्तियों ने एकान्त पाते हुए दो सांड मेरे पीछे छोड़ दिए। वे सांड मेरे पीछे दौड़ते आते थे और पीछे से लोग उन्हें शब्दों से छी-छी करके उकसाते जाते थे। जब मैंने देखा कि मेरे बचने का कोई उपाय नहीं है तो इस दीपक के घर में घुस गया। मैंने जो कुछ किया, प्राण-रक्षा के लिए किया है। मैं क्षमा चाहता हूँ महाराज !

एक पंडित—तो तुम इस ब्राह्मण के घर में क्यों घुसे ?

शूद्रक—जी प्राण बचाने के लिए।

दूसरा पंडित—तो तुम अपराध स्वीकार करते हो।

शूद्रक—जी !

पहला पंडित—तुम्हें ज्ञात है तुम्हारे जाने से ब्राह्मण का घर अपवित्र हो गया।

[शूद्रक चुप रहता है]

सिद्धार्थ—प्राणरक्षा सब धर्मों से बढ़कर है।

पहला पंडित—दूसरे को अपमानित करके हानि पहुँचाकर प्राणरक्षा उचित नहीं है। यह शूद्र है शूद्र भी चाण्डाल इसने दीपक ब्राह्मण के घर को अपवित्र किया। इसका दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा।

सिद्धार्थ—जानकर तो इसने यह नहीं किया। संकटकाल के कारण इसे ऐसे करना पड़ा। मेरे विचार में शूद्रक निरपराध है।

शूद्रक—जय हो युवराज की !

न्यायाध्यक्ष—चुप रहो ! जान न हो या अनजान में तुमने आचार के विरुद्ध आचरण किया है। ब्राह्मण को इससे अपमान पहुँचा ।

पहला पंडित—इसलिए शूद्रक दण्ड्य है।

न्यायाध्यक्ष—हाँ शूद्रक दण्ड्य है। शूद्रक पन्द्रह स्वर्ण कार्षापण दीपक को

देगा। न देने पर दो वर्ष तक उसका भृत्य होकर रहेगा। (लेखक निर्णय लिखते हैं और न्यायाध्यक्ष उसमें हस्ताक्षर करते हैं।)

सिद्धार्थ—क्या लोकाचार भी धर्म है?

पहला पंडित—तुम नहीं समझ सकते युवराज! धर्म का रहस्य बड़ा गहन है। केवल विद्वान् ब्राह्मण ही इसको जान सकते हैं।

चोबदार—न्यायाध्यक्ष की जय हो!

[दोनों चले जाते हैं। कर्मचारी घण्टा बजाते हैं और दो प्रार्थी आते हैं।]

एक प्रार्थी—इस यज्ञदत्त ने मेरा छाग चुरा लिया और यज्ञ में ले जाकर उसकी बलि दे दी।

प्रतिपक्षी—मैंने यज्ञ प्रारम्भ किया देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, किन्तु दरिद्रता के कारण बलि के लिए छाग का आयोजन न कर सका। मैंने नम्रता से विनय से यज्ञदत्त से छाग माँगा किन्तु इसने देने से निषेध किया। यज्ञ बिगड़ा जाता था इसलिए मैंने फिर मूल्य चुका देने के वचन पर इसका छाग खुलवा लिया और बलि दे दी। मैंने तस्करता नहीं की धर्माध्यक्ष! धर्म का ही पालन किया है।

एक पंडित—धर्म में व्याघात डालने के कारण प्रार्थी दोषी है और उस समय जब इस यज्ञकर्ता ने मूल्य चुकाने का वचन दिया हो।

दूसरा पंडित—दूसरे को हानि पहुँचाकर धर्म-कार्य कभी सफल नहीं कहला सकता। यज्ञकर्ता दोषी है।

एक पंडित—प्राण कंठ में आने पर भी धर्म को न छोड़े। ब्राह्मण का काम यज्ञ करना है। यदि देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उसने यज्ञ किया तो एक प्रकार से धर्मकार्य किया। और प्रधान धर्म-पालन के लिए और कर्म गौण कार्य है। यद्यपि प्रतिपक्षी इसको चोरी नहीं कहता वह तो छाग का मूल्य फिर चुका देने को कहता है। ऐसी अवस्था में छाग का अपहरण कार्य की महत्ता के कारण लघु है। अतः याज्ञिक निर्दोष है।

सिद्धार्थ—क्या यज्ञ में बलि देना आवश्यक है?

न्यायाध्यक्ष—बलि के बिना यज्ञ सांगोपांग नहीं हो सकता। मैं नि-

हूँ प्रतिवादी वादी को धन के विपाक में से कुछ दे और भविष्य में इस प्रकार कार्य न करने का वचन भी तभी उसे छोड़ा जाए। वादी को धर्मपालन के लिए सहायता करने की भविष्य में प्रतिज्ञा करनी होगी। (लेखक निर्णय लिखते हैं, न्यायाध्यक्ष हस्ताक्षर करते हैं।)

[दोनों चले जाते हैं। दो और आते हैं]

वादी—मेरी एक प्रार्थना ?।

एक पंडित—क्या तुम ब्राह्मण हो ? बैठ जाओ।

वादी—प्रतिवादी मेरे अभिन्न मित्र हैं। मैं इनके यहाँ आकर ठहरा और इनकी अनुपस्थिति में मैंने उद्यान से फल तोड़कर खा लिए। इसमें सन्देह नहीं कि मुझे भूख लग रही थी किन्तु है तो यह अपराध ही। मैं दण्ड चाहता हूँ।

प्रतिवादी—वादी मेरे मित्र हैं। मेरा कर्तव्य था कि मित्र के घर आने पर मैं सत्कार करता इसी निमित्त भोजन सामग्री लेने नगर को चला गया। वहाँ अनावश्यक रूप से विलम्ब हो गया। सायंकाल लौटने पर देखता हूँ कि मित्र बहुत खिन्न हैं। कारण यही है जो उन्होंने धर्माधिकार के सामने रखा। मेरा वक्तव्य यह है कि मित्र ने चोर कर्म नहीं किया। मैंने ही अपनी असावधानी से मित्र का तिरस्कार किया और उनका ठीक-ठीक सत्कार न कर सका। वस्तुतः मैं दण्डनीय हूँ मित्र नहीं।

पहला पंडित—सच्चरित्र व्यक्तियों का अभियोग ऐसा ही होता है।

दूसरा पंडित—धर्म भावना ही दण्ड चाहने का कारण है।

सिद्धार्थ—मैं यह नहीं जानता कि शास्त्र किसे दोषी ठहराता है परन्तु आप दोनों ही वन्दनीय हैं।

वादी—मुझे शास्त्रानुसार दण्ड मिलना चाहिए।

प्रतिवादी—मुझे धर्मानुसार दण्ड मिलना चाहिए।

वादी—दोषी मैं हूँ। यदि मुझे दण्ड नहीं दिया गया तो समाज में चोर कर्म बढ़ जाएगा मुझे स्वर्ग नहीं मिलेगा।

पहला पंडित—तो तुम चोर कर्म स्वीकार करते हो।

वादी—जी। जान में या न जान में भूख से पीड़ित होकर मैंने चोरी की है।

न्यायाध्यक्ष—जानते हो शास्त्र में चोरी का क्या दण्ड है ?

वादी—उँगलियाँ काट देना।

न्यायाध्यक्ष—नहीं हाथ काट देना।

वादी—जी मैं तैयार हूँ।

प्रतिवादी—(हाथ जोड़कर) ऐसा न कीजिए न्यायाध्यक्ष इस पाप का कारण मैं हूँ।

न्यायाध्यक्ष—वादी का हाथ काट दिया जाए। इसने चोरी की है। यह स्वीकार भी करता है और प्रतिवादी दो वर्ष तक वादी का समयम मूल्य रखकर सेवा करता रहे।

वादी—न्यायाध्यक्ष की जय हो।

प्रतिवादी—न्याय की विजय हो।

सिद्धार्थ—न्याय बड़ा कठोर है। उसके आँखें नहीं हैं, हृदय नहीं है। वह यन्त्र है।

[उठकर चले जाते हैं—न्यायाध्यक्ष उनके पीछे चले जाते हैं]



तीसरा दृश्य

[नेपथ्य में शहनाई बज रही है। रंगमंच पर माया के प्रसूतिकागार का दृश्य एक बारीक रेशमी मसहरी के भीतर। गोपा पर्लंग पर बैठी है। उसका नवजात बालक पास सो रहा है। कुछ सखियाँ पर्लंग के पास चटाई बिछी भूमि पर बैठी हैं। कुछ इधर से उधर आती-जाती व्यस्त सी दिखाई दे रही हैं। गौतमी आनन्द और उल्लास से भरी हुई आती है खूब शृंगार किए। प्रसूतिकागार में धूप अगरचन्दन की बत्तियाँ जल रही हैं। चटाई पर बैठी हुई सखियों के पास गाने और बजाने का सामान रखा है।]

एक सखी—अरी आओ सखियो इससे अधिक आनन्द का और कौन सा

दिन होगा ?

दूसरी सखी—बधाई गाओ बधाई।

तीसरी सखी—आज महाराज की अभिलाषाओं की राज्य की श्रीवृद्धि का दिन है।

[गौतमी आती है]

सब सखियाँ—बधाई हो महारानी ?

गौतमी—तुम्हें भी मेरी प्यारी बेटियो ! आज कितनी प्रसन्नता का दिन है। मेरी जन्म भर की सिद्धार्थ की सेवा उसके पालन-पोषण का फल मुझे ईश्वर ने दिया है। गाओ गाओ। बधाई गाओ।

गौतमी—महाराज को यह समाचार भेजा या नहीं ?

एक सखी—हाँ कहलवा तो दिया है महाराज स्वयं पधार रहे हैं ! महारानीजी नगर में सब ओर हर्ष की नदी बह रही है। सुन नहीं रही हो चारों ओर डिंडिम की ध्वनि सुनाई दे रही है। नागरिकों ने नगर, हाट बाजार, वीथी सजाने आरम्भ कर दिए हैं। घर-घर मंगलाचार हो रहे हैं।

गौतमी—महाराज ने इस समाचार को सुनकर क्या कहा ?

प्रतिहारी—(आगे बढ़कर) महाराज ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने एकदम अपने गले की माला उतारकर मुझे दे दी और सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। मन्त्रियों को बुलवाकर सहस्रों गौ स्वर्ण मोती माणिक मुक्ता और अन्न आदि के दान की व्यवस्था की।

गौतमी—राज्य के भाग्योदय का दिन है प्रतिहारी।

प्रतिहारी—ज्योतिषी पण्डित लोग बैठे हुए नवजात बालक के भाग्य का वर्णन कर रहे हैं।

गौतमी—ज्योतिषी तो रात भर वहीं बैठे रहे हैं जिससे ठीक-ठीक लग्न का ज्ञान प्राप्त कर सकें। महाराज भी रात भर नहीं सोए हैं। सच तो यह है रात भर नगर में जैसे शुभ समाचार की प्रतीक्षा करते-करते उत्सुकता व्याकुलता लोगों में व्याप्त हो रही हो। देखो कुछ स्त्रियों को दूसरे कक्ष में बैठा दो। वे निरन्तर बधाई गाती रहें। महाराज आ रहे होंगे।

सखियाँ—ठीक है। (सब उठकर चली जाती हैं और वहीं से गाने का स्वर सुनाई पड़ता है।)

आओ री मिल मंगल गाएँ—
इन्द्र अवतरे हैं वसुधा पे—
हम भी मोद बढ़ाएँ।
राम हुए कौशल्या के ज्यों
त्रिशला नैन फल पाएँ।

[इस प्रकार नेपथ्य से गाने की ध्वनि आती रहती है। प्रसन्न मुख शुद्धोदन, मन्त्री सेनापति ज्योतिषी राजपंडित आते हैं। सब लोग राजा को बधाई देते हैं।]

शुद्धोदन—(प्रसन्नता से) आज मेरी आशाएँ, साधनाएँ, तपस्याएँ फलीभूत हुईं। कितनी प्रसन्नता का दिन है!

मन्त्री—महाराज अब आप युवराज की तरफ से भी निश्चिन्त रहिए। वे अब सहज ही संसार त्यागी नहीं हो सकते।

राजपंडित—महाराज पुत्र-पौत्र सहित चिरायु हों।

[गीत की ध्वनि आ रही है]

अमरपुरी में बजते बाजे सुर मिल सुख से न्हाएँ।

शुद्धोदन—सिद्धार्थ कहाँ है?

मन्त्री—महाराज उन्हें आपके सामने बुलाऊँ?

शुद्धोदन—नहीं उसे हमारे सामने यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है। मन्त्री उसके मन का भाव देखते रहना चाहिए। (बच्चा रोने लगता है स्त्रियाँ दौड़कर आती दिखाई देती हैं। गीत की ध्वनि आती रहती है बाजे बज रहे हैं। कुछ सेवक भागते दौड़ते आते दिखाई देते हैं।)

[सब चले जाते हैं—सिद्धार्थ एक ओर खड़े हैं। दो सखियाँ आमने-सामने एक-दूसरे को देखकर।)

पहली सखी—देखा यह है नारी के सौन्दर्य व यौवन की सफलता।

दूसरी सखी—तुझे तो बड़ी ईर्ष्या हो रही होगी कि तू गोपा से भी बड़ी

हो गई पर

पहली सखी—(उसके मुँह पर हाथ रखकर) चुप !

दूसरी सखी—क्यों ? मैं तो कहूँगी। अन्तर केवल इतना ही है किसी के स्वप्न जाग उठते हैं किसी के नहीं।

पहली सखी—कोई कली बिना फूल हुए ही झड़ जाती है।

दूसरी सखी—जीवन का निर्माण करते समय विधाता का हृदय यदि प्रसन्न हुआ तब उस जीव को उसने भाग्यशाली बना दिया और बस !

पहली सखी—नहीं ऐसा नहीं है कर्तव्य की झिल्लाहट में यन्त्र की तरह काम करने वाले विधाता ने किसी को ठीक बनाया और किसी को कटे हुए हाथों से बिना भाग्य के छोड़ दिया हम उन सातों में से हैं।

दूसरी सखी—रूप और सौन्दर्य यौवन और लालसा बाँटते समय भी बूढ़े विधाता से प्रमाद हो ही जाता रहा होगा। आओ चलें कोकिली भी न शब्द सुनाई दे रहे हैं।

पहली सखी—विवेकहीन विधाता को इतना अवकाश कहाँ कि लालसा देकर उसकी पूर्ति का साधन भी देता। चलो। (दोनों चली जाती हैं)

[दो कंचुकियों का प्रवेश]

पहला—क्या हम लोग वन के वृक्ष के लटकते पात की तरह निरपेक्ष नहीं हैं ? न यौवन न लालसा और न उसकी पूर्ति।

दूसरा—सर्वथा डोलते रहना एक यन्त्र हो मानो। भला हम लोगों में किस बात की कमी है ?

पहला—यह तुम नहीं जान सकते जीवनहीन प्राणी ? तुममें हृदय है पर गति नहीं मन है पर उल्लास नहीं यौवन है पर कामना नहीं जीवन है पर उद्देश नहीं।

दूसरा—न हम लोग मनुष्य हैं, न स्त्री।

पहला—ठूँठ की तरह निर्जीव कंकाल की तरह निष्प्राण विधाता के अभिशाप।

दूसरा—हम लोग जीवन की व्यथा हैं। न जाने हमारे निर्माण का क्या

मय है ?

बहुला—यही क्या हम कर रहे हैं। प्राणहीन प्राणी। आओ चलें कदाचित् यमराज आ रहे हैं। वे देखो आ ही रहे हैं। हाँ चलो। (चले जाते हैं)

[सिद्धार्थ देवदत्त के साथ]

सिद्धार्थ—मेरे ज्ञान-चिन्तन का स्रोत इस जगह आकर टूट गया है देवदत्त! कितना वीभत्स है यह काण्ड? यह सब मैं क्या सुन रहा हूँ।

देवदत्त—गृहस्थ के जीवन की सार्थकता सृष्टि को आगे बढ़ाना है। आपने भी वही क्रिया को समार करता आ रहा है।

सिद्धार्थ—फिर मुझमें और साधारण गृहस्थी में क्या अन्तर हुआ। वासना की दासता लालसा का उभार लेकर मैं भी उसी नरक में कूद पड़ा जहाँ मनुष्य का विवेक कुचलकर मैला हो जाता है। यही सोचता हूँ।

देवदत्त—बच्चे को देखा युवराज! बड़ा सुन्दर है।

सिद्धार्थ—कुछ भी इच्छा नहीं होती।

देवदत्त—तुम भूलते हो युवराज गृहस्थ जीवन के कर्तव्य का चरम विकास है पुण्य त्यागमयी सृष्टि का स्वाभाविक आलोक है।

सिद्धार्थ—परन्तु मेरे मार्ग का विघ्न है पुत्रोत्पत्ति काल से ही मुझ में तीव्र वैराग्य का उदय हो रहा है। जैसे कोई शक्ति मुझे खींचे लिए चली जा रही है। मैं अब नहीं रुक सकता। मुझे जाना होगा। मैंने एक व्याधि और जरा भी है उसका निराकरण करना होगा।

[कंचुकी का प्रवेश]

कंचुकी—युवराज माता गौतमी आपसे मिलना चाहती हैं।

सिद्धार्थ—हाँ पहले पिता ने बुला भेजा था किन्तु मैं उस समय स्वस्थ न था। चलो देवदत्त!

देवदत्त—हाँ चलिए। किन्तु ।

सिद्धार्थ—किन्तु क्या ?

देवदत्त—किन्तु कुछ नहीं न मालूम क्या कहना चाहता था भूल गया

सिद्धार्थ—यही न यह जीवन की विजय है।
देवदत्त—हाँ यह भी और वह भी!
सिद्धार्थ—जरा जन्म मृत्यु तीनों ही भयकर हैं।
[बाजे बजते रहते हैं]



चौथा दृश्य

रात का समय

[*गोपा अपने नवजात शिशु के साथ पर्यंक पर बैठी है। पास ही सखियाँ बैठी हैं। गायन-वाद्य सजे हुए रखे हैं। पुष्पों के स्तवक सुगन्धि दे रहे हैं। धूप बत्तियाँ कमरे को सुगन्धि से भर रही हैं। सुन्दर शृङ्गार से सज्जित गोपा बार-बार खोते हुए शिशु के मुख को निहार रही है। परिचारिकाएँ पंखा झल रही हैं।*]

वामीशा—(शिशु को देखकर) कितना सुन्दर बालक है मानो युवरा[ज] सिकुड़-सिमट कर सौन्दर्य के अवतार होकर तुम्हारी गोद में आ गए हों।

सुकेशी—दूर पगली! यों कह देवी गोपा और युवराज की आत्माएँ मूर्ति धारण करके आ गई हों।

गोपा—(शिशु को ध्यान से देखकर पुलकित होती हुई मुसकरा देती है) हाँ कल्पना करो। सुकेशी तुम तो कवि हो। बनाओ न कोई गीत।

वामीशा—कवि होने से क्या होता है प्रेरणा भी तो चाहिए। यदि यह अपने होता तो क्या एक दम गीत अब तक बन जाता।

सुकेशी—यह क्या मेरा नहीं है और मैं किसकी हूँ?

वामीशा—कौन?

गोपा—अनुभूति होनी चाहिए सखी!

सुकेशी—वह तो केवल गोपा देवी को ही हो सकती है।

चारुलेखा—हाँ ईर्ष्या से मेघों में प्रेरणा की विद्युत् छिप गई है।

सुकेशी—किन्तु तुम्हारे इन नयनों के महाकाव्य में कितनी प्रणय-तारिकाएँ जगमगा रही हैं? यह तुम्हारे सिवा कौन जान सकता है चारु! एक चन्द्रमा उदय होने वाला था वह न जाने किसके अभिशाप की अमावस लेकर छिप गया है। मैं तो कहूँगी तुम्हारा नामकरण चारुलेखा रखने वाले माता-पिता ने तुम्हारे शैशव में ही अवश्य भविष्य को छू लिया होगा।

गोपा—यह कवि हृदय के उद्गार हैं, चारुलेखा अब तुम पार न पा सकोगी।

चारुलेखा—जिन मेघों की लटों में विद्युत् जिन नारियों के केशों में नाग जिन प्रणय के उच्छ्वासों में धूम जिस रजनी के विलास में तिमिर हो उन सबकी स्निग्ध छाया लेकर नारी का निर्माण हुआ है।

सुकेशी—(हँसकर) जीवन की चरम साधना यह सन्तति है जो हमारे भाग्य की तरह इन आशाओं में चमक उठी है गोपा देवी!

चारुलेखा—(आँखें खोले शिशु को देखकर) यह बेचारा क्या जाने संसार कितना कटु है कितना मीठा?

सुकेशी—(बालक को गोद में उठाकर) जीवन से सुन्दर, शैशव से भोले रजनी से शान्त इन बालकों में मानो ईश्वर की महिमा मूर्त होकर आ गई हो।

गोपा—तुम्हारी उपमाएँ तो अद्भुत होती हैं सुकेशी!

चारुमैत्री—अमृत-सी मीठी।

सुकेशी—अमृत भी तो कवि-कल्पना है।

[बालक रोता है। सुकेशी हिला-हिलाकर गाती है। चारुलेखा वीणा बजाती है।]

लोरी

सो जा सो जा राजदुलारे, सो जा सो जा।
उल्लास विकल
दीपक केवल

तेरे स्वप्न में हो मृदु विभ्रम
भर छवि ज्योत्स्ना का अंचल
जगता सपनों के पौ पराग
तू अमर परी की गोदी का शृङ्गार सलोना हो जा।
ऊँघते ऊँघते,
प्रतिपल बसे
प्रियतम के पथ दिन रात बसे
कुसुमों का लेकर लघु विलास
सजता पीयूषाकुल सदुच्छ्वास
या मुक्त हास से जगत दीप की
मंजुल मंजुल सो जा।
सो जा सो जा राजदुलारे सो जा सो जा।

[शिशु गीत सुनकर सोता सा दिखाई देता है। गोपा भी कुछ निद्रित सी देख पड़ती है। सखियाँ परिचारिकाएँ हट जाती हैं। कुछ निद्रा का सा साम्राज्य छा जाता है। इसी बीच सिद्धार्थ प्रवेश करते हैं। केवल माता और शिशु के श्वासोच्छ्वास सुनाई देते हैं।]

सिद्धार्थ—यही अवसर है। यौवन सो रहा है मातृत्व निद्रित है। शैशव जीवन के प्रथम प्रभात की वारुणी पीकर मस्त है। यही अवसर है। गोपा तुम कितनी सुन्दर हो किन्तु तुम्हारी यह सुन्दरता मुझे प्रेरित कर रही है कि मैं प्राणिमात्र के जीवन सौन्दर्य के अमर पथ की खोज करूँ। ममता में दिन की गाँठ की तरह फँसी हुई जरा व्याधि मृत्यु का उपाय ढूँढूँ। आज मेरे हृदय में बार-बार कोई कह रहा है कि यही अवसर है। गोपा मैंने तुमसे विवाह किया उसका फल तुम्हें प्राप्त हो गया यही अवसर है।

[एक छायाचित्र]

छायाचित्र—नहीं यौवन के मधुमय वसंत को छोड़कर जाना प्रमाद है हाथ में आए हुए अमृत को ठुकराकर अलभ्य के लिए यत्न करना मूर्खता है।

सिद्धार्थ—नहीं यह सब स्थायी नहीं है यह मृगमरीचिका है, छल है

भ्रान्ति है। मुझे जाना ही होगा। यह देखो मैं देख रहा हूँ, गोपा के बाल श्वेत हो गए हैं, उसके शरीर में झुर्रियाँ पड़ गई हैं। उसके भीतर एक कंकाल झाँक रहा है। ठहरो ठहरो (फिर देखते हैं। गोपा स्वप्न में हँस रही है)।

मायाविष्ट—सिद्धार्थ एक बार फिर झाँककर देखो यह तुम्हारा बड़ा अन्याय होगा कि तुम सती साध्वी पतिव्रता गोपा को असहाय छोड़कर सदा के लिए रोने का उपहार देकर चले जाओगे। तब उससे विवाह करके क्या सुख पाया ? क्या एक पुत्र उसे दे देने मात्र से तुम गृहस्थ के कर्तव्य से छुटकारा पा गए ! नहीं ऐसा नहीं है। इस संसार में सुख-दुख सभी हैं उनसे डरकर संसार तो कोई नहीं छोड़ देता ! क्या यह तुम्हारी कायरता नहीं है। देखो देखो गोपा स्वप्न में तुम्हें पाकर हँसती हुई तुम्हारा आलिंगन करने बाहु पसार रही है। ऐसा न करो सिद्धार्थ !

सिद्धार्थ—नहीं एक गोपा के लिए संसार के दुःख व्याधि के मूल कारण की खोज से विरत रहना प्रमाद है। सिद्धार्थ का जीवन साधारण गृहस्थ का जीवन नहीं है। (देखते हैं सिद्धार्थ के बीसियों रूप उनके सामने आकर खड़े हो गए हैं, जिनमें वे एक-दूसरे से उज्ज्वल से उज्ज्वलतर होते चले गए हैं और अन्तिम रूप में सिद्धार्थ परिपक्व ज्ञानी की तरह केवल विवेक का दीपक जलाए संसारत्यागी के रूप में खड़े हैं।) नहीं यही अवसर है।

मायाविष्ट—पिता बूढ़े पिता जिन्होंने एक ही दीपक जलाया पुत्र राज्याधिकारी होकर मेरे वंश का कारण होगा। जिन्होंने माता का प्यार देकर एकमात्र पुत्र का पालन किया विवाह किया वे !

सिद्धार्थ—मुझे उनका दुख भी तो दूर करना है। मातृऋण पितृऋण मानवऋण चुकाने का यही अवसर है। मुझे कोई शक्ति मेरे ध्येय से नहीं हटा सकती। मैं जाऊँगा। जाऊँगा मैं।

मायाविष्ट—अच्छा जाओ विश्व का कल्याण तुम्हारे हाथ में है। जाओ तुम्हारा मार्ग शुभ हो।

सिद्धार्थ—यह क्या था ? कौन था यह ? कोई भी तो नहीं। कोई कुछ भी नहीं है।

[चले जाते हैं]

पाँचवाँ दृश्य

शुद्धोदन का मन्त्रणागार

[शुद्धोदन गौतमी मन्त्री तथा कुछ अन्य कर्मचारी बैठे हैं]

शुद्धोदन—(प्रसन्नता से) कभी-कभी भ्रम से बड़े-बड़े अनर्थ हो जाते हैं। तिनके का पहाड़ इसी को कहते हैं। मैं समझता था कि युवराज कहीं साधु न हो जाएँ, वह अनर्थकारी भ्रम आज दूर हो गया।

गौतमी—मुझे तो विश्वास है महाराज राजकुमार के सम्बन्ध में वैसी धारणा ही असत्य थी। मैं कहती न थी कि विवाह मनुष्य को बाँधकर रखने की सबसे मुख्य शृङ्खला है। इसमें मनुष्य सब भूल जाता है। यह जीवन का सबसे बड़ा मोह है।

मन्त्री—किन्तु विरक्ति का कारण भी हो सकता है। मुझे तो राजकुमार में कोई परिवर्तन नहीं देख पड़ता। वे वैसे ही शान्त गम्भीर मौन आकृति धारण किए रहते हैं।

शुद्धोदन—नहीं यह तुम्हारा भ्रम है।

मन्त्री—मैं चाहता हूँ यह मेरा भ्रम ही सिद्ध हो।

गौतमी—मन्त्री बालक का मुँह देखकर कौन तपस्वी है जो गृहस्थ न बन जाएगा। कौन साधु है जो बँध न जाएगा। नारी जीवन का बड़ा आकर्षण है। गोपा संसार का श्रेष्ठ नारीरत्न है जिसे पाकर सिद्धार्थ की सब आशाएँ उसमें केन्द्रित हो गई हैं। वह भग जा नहीं सकता। भौंरा कुसुम की सुगन्धि को छोड़ नहीं सकता।

शुद्धोदन—यह घनश्यामल मेघ विद्युत् को कब छोड़ सकता है जो एक बार नहीं शत बार उसके हृदय को चीरती रहती है। उसे पाकर वह कभी विरागी नहीं होता मन्त्रिन्!

मन्त्री—भगवान् करें पुत्रोत्पत्ति का यह उत्सव राजकुमार को गृहस्थ के जीवन में सदा के लिए बाँध रखे।

शुद्धोदन—हाँ मुझे विश्वास है नारी का प्रेम बालक का जन्म सिद्धार्थ

के विचारों को बदल देने में समर्थ होंगे। देखो मैं बालक की उत्पत्ति के दसवें दिन राज्य भर में एक महान् उत्सव करना चाहता हूँ। उसकी तैयारी होनी चाहिए मन्त्रिन् !

मन्त्री—जो आज्ञा प्रजा भी चाहती है कि ऐसा उत्सव हो।

शुद्धोदन—इस समय तुम्हें कष्ट देने का यही कारण है कि हम लोग बैठ कर उत्सव की रूपरेखा बनाएँ। नगर भर में उस दिन ब्राह्मणों को भोजन वस्त्र और यथेष्ट दक्षिणा दी जाए। दरिद्रों कंगालों को वस्त्र भोजन दिया जाए। राज-कर्मचारियों को दो-दो मास का वेतन अधिक दिया जाए। सब राज्य सभासदों को राज्यकोष से वस्त्र तथा अस्त्र भेंट किए जाएँ। स्थान-स्थान पर यज्ञ हों। कूप की प्रपाएँ (प्याऊ) खोल दी जाएँ।

मन्त्री—ऐसा ही होगा महाराज !

शुद्धोदन—उस दिन विशेष उत्सव का आयोजन हो। राज-कवि बालक राहुल की प्रशंसा में कविताएँ पढ़ें। शास्त्रार्थ हों। रात्रि के समय नृत्य गीत वादित्र की आयोजना हो।

गौतमी—हाँ मन्त्रीजी ?

मन्त्री—जैसी आज्ञा।

शुद्धोदन—बस, यही मुझे कहना है। रात अधिक हो गई है। आप लोग जाइए। (गौतमी से) परिचारिकाओं को एक-एक स्वर्णहार दिया जाए। पुत्रेष्टी को रत्नहार।

सिद्धार्थ—जी। (सब चले जाते हैं। शुद्धोदन शय्या पर लेट जाते हैं। दीपक का प्रकाश मन्द हो जाता है। शुद्धोदन सो जाते हैं।)

[सिद्धार्थ का प्रवेश]

सिद्धार्थ—(धीरे से) सो रहे हैं पिता (एक तरफ खड़े हो जाते हैं। देखते रहते हैं) जाना ही होगा। समुद्र से विशाल स्नेह को हमने नदी, नालों स्रोतों प्रनालों में बाँधकर छोटा कर दिया है उसे फिर समुद्र बना देना होगा। विश्व की महान् कल्याण भावना को असीम बनाना होगा।

शुद्धोदन—(स्वप्न में बड़बड़ाते हुए) नहीं अब यह सम्भव

सिद्धार्थ मेरा है उसे कोई नहीं छीन सकता। कितना सुन्दर बालक है। मन्त्री धनकोष खुलवा दो। राज्य में कोई दरिद्री न रहे। (हँसते हैं) जाओ मन्त्री जाओ। बेटा सिद्धार्थ आज प्रजाजन कितना उत्सव मना रहे हैं। जाओ देखो। अपने दर्शन से उन्हें कृतकृत्य कर दो बेटा। जाओ। छन्दक युवराज का रथ तैयार करो।

सिद्धार्थ—अपने मनोरथों का आकाश कितना सीमित है। जाता हूँ। प्रणाम पिता! (चलने लगते हैं)

छायाचित्र—ठहरो पिता को पत्नी को नवजात बालक को इस तरह छोड़कर जाना क्या तुम्हारे जैसे वीर को शोभा देता है। तनिक देखो यह वैभव यह आनन्द यह उन्माद कहाँ मिलेगा?

सिद्धार्थ—कौन? (लौटकर देखते हैं। कोई नहीं है) यह सब अस्थायी है नश्वर है। मुझे अनश्वर की खोज में जाना होगा। जाऊँगा। पिता पुत्र स्त्री मुझे कोई भी नहीं रोक सकते।

छायाचित्र—अच्छा एक बात सुनो तुम्हें कौन-सा दुःख है? न तो तुम रोगी हो न वृद्ध न मृत्यु ही तुम्हारे सामने है। यह जीवन विश्राम है जब वह समय आवे तब सोचना। अभी तो यौवन का उपभोग करो। यौवन जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता है। सौन्दर्य यौवन का राति गमि उल्लास! क्या यह सब कुछ भी नहीं? नहीं यही जीवन है।

सिद्धार्थ—यह कौन है क्या है? यह मेरा असामर्थ्य है जो बार-बार मुझे रोक रहा है। मैं नहीं रुकूँगा। देखो इधर मैं सहस्रों नर-नारियों की दुःखी पुकार अपना न दूब हुए व्याकोष्ठवान के मेघा को चारों ओर घूमते देख रहा हूँ। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सुख से मरे हुए दुःख के मन्त्र ककालों की सिसकियाँ देख रहा हूँ। उनके रोने क्रन्दन पीड़ा से मेरा हृदय फटा जा रहा है। मैं रुक नहीं सकता। मैं आज कितना दुःखी हूँ।

छायाचित्र—यह राजनर्तकी का नृत्य सुकेशी का गीत गौतमी का भावपाश कौमुदी का वात्सल्य प्रभ सभी कुछ छोड़कर चले जाओगे?

सिद्धार्थ—हाँ सभी छोड़कर जाना होगा। जाना ही होगा। रात के सुन

आम में कोई पुकार रहा है चलो। बलखाती बूँद-बूँद जल भरकर कह रही है चलो चलो। तारिकाएँ जैसे हँस-हँसकर मुझे बुला रही हैं आओ आओ! काल के श्वास प्रश्वास से एक ही ध्वनि उठ रही है, चलो चलो। यही अवसर है। यही अवसर है। अतीत मुझे देख रहा है। वर्तमान कह रहा है चलो भविष्य कह रहा है आओ। मैं जाऊँगा।

[एकदम चले जाते हैं]

शुद्धोदन—(उसी अवस्था में) कितना सुन्दर, सुखद स्निग्ध प्रभात होगा आज। क्या कहते हो कल्याण। हाँ कल्याण ही तो। कल्याण। पिता का कल्याण पुत्र का कल्याण स्त्री का कल्याण। मन्त्री अन्नकोष खुलवा दो। मेरे राज्य में कोई भूखा न रहे। हा हा हा हा! रत्नहार मोती स्वर्णहार वितीर्ण करो। यज्ञ दान तप पूजा-पाठ की व्यवस्था करो। मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। (एकदम प्रसन्नता के मारे आँखें खुल जाती हैं। देखते हैं, सवेरा हो रहा है। उषा का प्रकाश फैल रहा है) प्रभात हो गया। यह सब चुपचाप क्यों? बन्दीजन क्यों नहीं गा रहे हैं? (ताली बजाकर) कोई है। (परिचारिका आती है) क्या बात है?

परिचारिका—महाराज।

शुद्धोदन—बोल क्या बात है?

परिचारिका—युवराज प्रासाद में नहीं हैं।

शुद्धोदन—(उछलकर) कहाँ हैं, कहाँ गए?

परिचारिका—चले गए। सब कुछ छोड़कर चले गए। छन्दक भी नहीं है?

शुद्धोदन—नहीं फिर नहीं। गए क्या? (मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं)



छठा दृश्य

समय—प्रातःकाल

[गोपा पर्यंक से उठकर अपने वस्त्रों को सँभालती हुई बालक को गोद

सिद्धार्थ मेरा है उसे कोई नहीं छीन सकता। कितना सुन्दर बालक है। मन्त्री धन्नकोष खुलवा दो। राज्य में कोई दरिद्री न रहे। (हँसते हैं) जाओ मन्त्री जाओ। बेटा सिद्धार्थ आज प्रजाजन कितना उत्सव मना रहे हैं। जाओ देखो। अपने दर्शन से उन्हें कृतकृत्य कर दो बेटा। जाओ। छन्दक युवराज का रथ तैयार करो।

सिद्धार्थ—अपने मनोरथों का आकाश कितना सीमित है। जाता हूँ। प्रणाम पिता! (चलने लगते हैं)

छायावित—ठहरो पिता को पत्नी को सद्यजात बालक को इस तरह छोड़कर जाना क्या तुम्हारे जैसे वीर को शोभा देता है। तनिक देखो यह वैभव यह आनन्द यह उल्लास कहाँ मिलेगा?

सिद्धार्थ—कौन? (चौंककर देखते हैं। कोई नहीं है) यह सब अस्थायी है नश्वर है। मुझे अनश्वर की खोज में जाना होगा। जाऊँगा। पिता पुत्र स्त्री मुझे कोई भी नहीं रोक सकते।

छायावित—अच्छा एक बात कहो तुम्हें कौन-सा दुःख है? न तो तुम रोगी हो न वृद्ध न मृत्यु ही तुम्हारे सामने है। यह यौवन विलास है जब वह समय आवे तब सोचना। अभी तो यौवन का उपभोग करो। यौवन जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता है। सौन्दर्य यौवन का रागि रागि उल्लास! क्या यह सब कुछ भी नहीं? नहीं यही जीवन है।

सिद्धार्थ—यह कौन है क्या है? यह मेरा अहामन्य है जो बार-बार मुझे रोक रहा है। मैं नहीं रुकूँगा। देखो देखो मैं सहस्रों नर-नारियों की दुःखी पुकार अश्रु में डूबे हुए क्षामोच्छ्वास के मेघ को चारों ओर घुमड़ते देख रहा हूँ। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में मर्म में गड़े हुए दुःख के तप्त कङ्कालों को तिलमिलाते देख रहा हूँ। उनके पीछे क्रन्दन पीड़ा में मेरा हृदय फटा जा रहा है। मैं रुक नहीं सकता। मैं आज कितना दुःखी हूँ।

छायावित—यह राजमर्यादा का सुख सुकेशी का मीत गाना का मार्दवस गौतमी का वात्सल्य प्रेम क्या सब छोड़कर चले जाओगे?

सिद्धार्थ—हाँ सभी छोड़कर जाना होगा। जाना ही होगा। रात के मुन

प्राण में कोई पुकार रहा है चलो। जननी घूँट-घूँट करा भरकर कह रही है चलो चलो। तारिकाएँ जैसे हँस-हँसकर मुझे बुला रही हैं आओ आओ। काल के श्वास-प्रश्वास से एक ही ध्वनि उठ रही है, चलो चलो। यही अवसर है। यही अवसर है। अतीत मुझे देख रहा है। वर्तमान कह रहा है चलो भविष्य कह रहा है आओ। मैं जाऊँगा।

[एकदम चल जाते हैं]

शुद्धोदन—(उसी अवस्था में) कितना सुन्दर सुखद स्निग्ध प्रभात होगा आज। क्या कहते हो कल्याण। हाँ कल्याण ही तो। कल्याण। पिता का कल्याण पुत्र का कल्याण स्त्री का कल्याण। मन्त्री अन्नकोष खुलवा दो। मेरे राज्य में कोई भूखा न रहे। हा हा हा हा! रत्नहार बाँटो स्वर्णहार वितीर्ण करो। यज्ञ दान तप पूजा-पाठ की व्यवस्था करो। मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। (एकदम प्रसन्नता के मारे आँखें खुल जाती हैं। देखते हैं सवेरा हो रहा है। उषा का प्रकाश फैल रहा है) प्रभात हो गया। यह सब चुपचाप क्यों? बन्दीजन क्यों नहीं गा रहे हैं? (ताली बजाकर) कोई है। (परिचारिका आती है) क्या बात है?

परिचारिका—महाराज ।

शुद्धोदन—बोल क्या बात है?

परिचारिका—युवराज प्रासाद में नहीं हैं।

शुद्धोदन—(चौंककर) कहाँ हैं, कहाँ गए?

परिचारिका—चले गए। सब कुछ छोड़कर चले गए। छन्दक भी नहीं है?

शुद्धोदन—नहीं फिर नहीं। गए क्या? (मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं)



छठा दृश्य

समय—प्रातःकाल

[गोपा पर्यंक से उठकर अपने बालों को सँभालती हुई बालक की ओर

देखने लगती है। वह सो रहा है। सोता हुआ कभी हँसता है कभी चौंक पड़ता है। गोपा उसे एकदम गोद में लेकर प्यार करने लगती है। मुँह चूम लेती है। फिर सुला देती है। और वीणा पर गीत गाने लगती है।]

गोपा— जागो राजदुलारे।

स्वप्न बिखेरती सजल हेरती
खिला-खिला कलि हँसा-हँसा अलि
धीरे-धीरे मन्द समीरे
आती ऊषा ले मंजूषा
मोतों के सब हारे—जागो राजदुलारे।

बीते तारे, कहीं किनारे
विगत निशापति मुदित दिवसपति
नव आशाएँ, नव मायाएँ,
जीवन जोबन शैशव यौवन
तुम्हें जगाते आ रे—जागो राजदुलारे।

छलक छलककर ललक ललककर
निकल कोख से नई पौध से
धीरे आते रस भर जाते
प्यार भिगोए, सपने खोए,
तेरे स्वप्न पर वारे—जागो राजदुलारे।

प्राणनाथ अभी नहीं आए? (ताली बजाती है। एक परिचारिका आकर उपस्थित हो जाती है) देखो आज युवराज कहाँ है। आज सवेरे मैं उनके चरणों के दर्शन न कर सकी।

परिचारिका—आज तो मुझे भी कुछ नहीं है देवी। सम्भव है महाराज ने उन्हें बुलाया हो। नगर भर में बधाइयाँ बज रही हैं। द्वार-द्वार पर बंदनवार बँधी हैं। घर घर में मंगलाचार हो रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्न है। महाराज तो इतने आनन्दित हैं कि विगत सप्ताह में उन्होंने कोष का मुख खोल दिया

है। कोई याचक इच्छावस्तु लिए बिना नहीं लौटा। आ कितने आनन्द का समय है।

गोपा—किन्तु प्राणनाथ इतने सवेरे ही क्यों चले गए? रात तो मैं स्वप्न देखकर डर ही गई थी। न जाने कैसा स्वप्न था वह। (इस समय सब चुप क्यों है)

परिचारिका—स्वप्न का अर्थ ही असत्य है, मिथ्या है, भ्रान्ति है।

गोपा—मुकेशी कहाँ है?

परिचारिका—अभी तो आई नहीं। बुलाऊँ क्या?

गोपा—रहने दे जी उदास हो रहा है। रह-रहकर जैसे कोई कचोट रहा है। इस बालक को देखकर हृदय को धीरज दे रही थी। कैसा मुख है बिलकुल उनकी आकृति हो जैसे।

परिचारिका—महारानी गौतमी ने नगरवासिनियों का बालक को देखना बन्द कर दिया है अन्यथा नगर की कोई स्त्री ऐसी न थी जो दर्शन न करना चाहती हो। जिन्होंने देखा है, वे कहते हैं, कि बालक दूसरे राजकुमार है। मैं तो मूर्ख हूँ पर इतना जानती हूँ, ऐसा सुन्दर बालक मैंने अपने जीवन में कोई नहीं देखा। भगवान् इसको आयु दें।

गोपा—मुकेशी भी नहीं आ रही है और सखियाँ भी न जाने क्या हुईं। सब ओर सुनसान दीख पड़ता है। देख तो क्या बात है? जरा शीघ्र देख मेरा जी न जाने आर्यपुत्र के लिए क्यों इतना व्यग्र हो रहा है? यह कौन आ रहा है?

परिचारिका—देवी गौतमी।

[गौतमी चुपचाप आकर बालक को देखती है और सिद्धार्थ की शय्या के पास पछाड़ खाकर गिर जाती है। गोपा घबराकर उठती है पर परिचारिका उठने से रोक लेती है। दो और परिचारिकाएं भी मूक होकर रानी की परिचर्या में लग जाती हैं।]

गोपा—क्या बात है कोई बोलता क्यों नहीं। बताओ शीघ्र बताओ मेरे जीवननाथ कहाँ हैं? बोलो कोई बोलो। यह सब कैसा सुनसान है। अन्तःपुर

के बाहर शहनाई बन्द हो गई है। सब लोग मूक क्यों हो गए?

गौतमी—(संज्ञा प्राप्त करके) बेटी!

गोपा—माताजी यह सब क्या है? कोई बोलता ही नहीं है। जैसे वाणी मूक हो गई हो।

गौतमी—बेटा सिद्धार्थ न जाने तुमने कब की शत्रुता निकाली।

गोपा—(चिल्लाकर) माता शीघ्र बताइए। मेरे प्राण मुँह को आ रहे हैं। क्या हुआ आर्यपुत्र को?

एक परिचारिका—वे वन को चले गए।

गोपा—क्या कहा वन को! हमको छोड़कर (एकदम पलंग पर गिर पड़ती है।)

दूसरी परिचारिका—देवी मूर्छित हो गई हैं माता जी! (उपचार को दौड़ती है।)

गौतमी—जीवन में अब रह ही क्या गया है? एक आशा थी वह भी धुल गई, था एक विश्वास था वह भी उड़ गया। एक स्वप्न था वह भी भंग हो गया। युवराज नहीं लौट सकते। वे वन को गए माँ को निरवलम्ब करके पिता का हृदय कुचलकर, देवी गोपा को अनाथ करके। हाय! अब यह किसके सहारे जीएगी। (मूर्छित हो जाती है)

[गोपा संज्ञा प्राप्त करके एकदम मूक हो जाती है। आँखें फाड़-फाड़कर देखती है। देखती रह जाती है। मौन मूक, निश्चल जड़, स्पंदनहीन-जैसे सब कुछ इस नारी का चित्र बन गया हो। आँखों में प्रकाश है जैसे देखती कुछ भी नहीं है। इन्द्रियाँ जैसे स्थिर हो गई हैं। लोग घबरा जाते हैं। दौड़-धूप होती है। परिचारिकाएं इधर-उधर दौड़ती हैं।]

एक परिचारिका—अनर्थ हो रहा है। महाराज उधर मर्मांतक प्रलाप कर रहे हैं। सुरेखा ने जब से सुना कि युवराज वन को चले गए हैं, तब से वह बेचारी कई बार मूर्छित हो चुकी है जैसे उसका सर्वस्व छिन गया हो। नगर भर पागल हो गया है। कुछ सैनिक भी घोड़े दौड़ा रहे हैं। कहते हैं—'हम युवराज को मनाकर मानेंगे। सारे नगर में इस समाचार से नागरिकों का धड़

स्वप्न बना दिया है। किन्तु देवी गोपा को क्या हो गया है। न कुछ बोलती हैं, न रोती हैं।

दूसरी परिचारिका—देवी को घोर कष्ट है। अत्यन्त कष्ट में मनुष्य की यही अवस्था होती है। देवी देवी।

पहली परिचारिका—देवी रानीजी देखिए, देवी की क्या दशा हो गई है। न बोलती हैं न हिलती-डुलती हैं। (गौतमी डरती हुई सी गोपा के पास आकर उसे हिलाती-डुलाती है उसे पुकारती है पर गोपा चुप है।)

गौतमी—महाराज को बुलाओ। (परिचारिका दौड़ी जाती है) गोपा गोपा गोपा। सुनो देखो महाराज की क्या दशा हो गई है। (शुद्धोदन विक्षिप्त अवस्था में आते हैं) महाराज देवी की रक्षा कीजिए।

शुद्धोदन—वही हुआ जिसके लिए मैं डर रहा था। सब उपाय व्यर्थ हुए। सारी चेष्टाएँ निष्फल हुईं। ओ कितना सुन्दर मुख है। मैं कुछ नहीं कर सका। (बालक की ओर देखकर) जीवन की सन्ध्या में तुम शुक्र की तरह उत्पन्न हुए। किन्तु भविष्य के मेघों ने तुम्हें आच्छन्न कर लिया। अमावस है, घोर अमावस। इसका प्रातःकाल नहीं है। अनन्त रात्रि। गोपा बेटी गोपा? घबराओ मत युवराज लौटेंगे।

गोपा—(चुप)।

गौतमी—बेटी गोपा। देखो।

शुद्धोदन—बेटी गोपा।

गौतमी—गोपा।

गोपा—(चुप)।

गौतमी—ज्ञात होता है यह राजकुमार के वियोग में प्राण दे देगी।

शुद्धोदन—मुझे कुछ नहीं सूझता। मैं अन्धा हो गया हूँ गौतमी। गोपा! (परिचारिका दौड़कर बच्चे को उठा लेती है और गोपा की गोद में डाल देती है। बालक ज़ोर-ज़ोर से रोता है। गोपा धीरे-धीरे चेतना प्राप्त करके बालक की ओर देखती है और रोने लगती है) बस, अब ठीक है। ठीक है। आजीवन रोने के लिए इसका जीना आवश्यक है। रो रो। तू भी रो मैं भी रोऊँ।

संसार रोवे। आओ इतना रोवें कि राजकुमार तप करते हुए बहकर हमारे पास आ जावें।

मन्त्री—महाराज अधीर न हों। सिद्धार्थ साधारण व्यक्ति नहीं हैं। वे संसार का दुख दूर करने आए हैं।

शुद्धोदन—हाँ मन्त्री वे हमारे नहीं हैं, वे संसार के हैं। किन्तु मेरा विश्वास है एक दिन वे लौटेंगे अवश्य। मैं उसी दिन की प्रतीक्षा करूँगा। निर्निमेष पलक खोलकर आँखें फैलाए प्रतीक्षा करूँगा। (रोकर) वह दिन कब आएगा। शायद कभी नहीं (चिल्लाकर) कभी नहीं! क्या हुआ मुझको? क्या हुआ मन्त्री! क्या हुआ गौतमी। यह सब हाय! (मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं।)



तीसरा अंक

पहला दृश्य

[इन दृश्यों में सिद्धार्थ रहेंगे, सामने का पर्दा बदलता रहेगा। अनोमा नदी के तट पर सिद्धार्थ गम्भीर मुख-मुद्रा से पूर्व की ओर मुँह किए बैठे हैं। सिर के बाल काट डाले हैं, एक व्याध के फटे-पुराने कपड़े पहने हुए हैं। बैठे हुए ध्यान से मानों कुछ सोच रहे हैं। पास ही झोपड़ियाँ दिखाई दे रही हैं जिनके बाहर तीन साधु हैं। उनमें से एक पशु की तरह जमीन पर पड़ा हुआ अन्न के दाने बिना हाथ लगाए मुँह से चुग रहा है। दूसरा घास और पत्ते चबा रहा है। तीसरा केवल मुँह फाड़कर हवा खा रहा है। यह देखकर सिद्धार्थ विस्मित से होकर उधर जाते हैं।]

सिद्धार्थ—आप लोग यह क्या कर रहे हैं?

पहला साधु—तप। (और फिर अन्न चुगने लगता है।)

सिद्धार्थ—(आश्चर्य से) तप! यह तो तप नहीं है। प्रकृति के दिए हुए साधनों का उपयोग न करके शरीर को सुखाना तो तप नहीं है?

दूसरा साधु—(ध्यान से उसकी ओर देखकर) कौन है रे तू?

तीसरा साधु—कोई बहेलिया है फंदे हाथ!

सिद्धार्थ—साधुओ मैं मुक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। संसार के दुःख का मूल कारण जानना चाहता हूँ क्या आप मार्ग बता सकेंगे?

पहला साधु—(अन्न चुगना बन्द करके) साधना करो। जैसे हम रहते हैं, वैसे रहो। दीक्षा लो।

दूसरा साधु—इस संसार में अधिक से अधिक दुःख उठाने से ही स्वर्ग प्राप्त होता है।

सिद्धार्थ—स्वर्ग क्या है?

तीसरा साधु—(मुँह फाड़ना बन्द करके) स्वर्ग स्वर्ग है।

सिद्धार्थ—कितना सुख उसकी सीमा भी तो होगी ?

तीनों—अरे भाई बहुत सुख है।

सिद्धार्थ—उसके बाद ?

पहला साधु—(चकित होकर) तू हमें पढ़ाने आया है रे ?

दूसरा साधु—उसके बाद सुख।

तीसरा साधु—क्यों व्यर्थ समय बिताते हो। जा भाई जा हमारे मार्ग में तो तप है। आत्मा का मन का जीतना ही तप है। तुझे यह सूझे तो कर नहीं तो अपना मार्ग ले। हमें कुटिया में चलकर तप करें। आहार हो गया।

पहला साधु—हाँ आज केवल बीस दाने ही चुगे हैं।

दूसरा साधु—और मैंने आज केवल एक मुट्ठी ही घास खाई है।

तीसरा साधु—और मैं केवल दस बार हो मुँह फाड़कर वायु पान कर सका हूँ।

पहला दूसरा साधु—आप सिद्ध हो गए हैं महात्मा।

तीसरा साधु—(दर्प से) हूँ। (तीनों कुटिया में चले जाते हैं, सिद्धार्थ चार्वाक मुनि से चले जाते हैं।)

[पर्दा गिरकर उठते ही एक दृश्य दिखाई देता है, और देखते हैं, एक साधु दोनों हाथ ऊपर उठाए खड़ा है। दूसरा सिर मिट्टी में गड़ाए पैर ऊपर किए हुए है। पहले साधु के हाथ सूखकर लकड़ी हो गए हैं। दूसरे का सिर भारी हो गया है और पैर सूज गए हैं। सिद्धार्थ प्रवेश करके।]

सिद्धार्थ—आप लोग क्या कर रहे हैं ?

पहला साधु—देख नहीं रहे हो क्या ?

दूसरा साधु—(जमीन में से) क्या है ?

पहला साधु—कोई है न जाने कौन है ?

सिद्धार्थ—क्या यह तप है ?

दूसरा साधु—(कठिनाई से) जा भाई अपनी राह ले साधुओं से मत बोल नहीं तो भस्म कर देंगे। जा !

[सिद्धार्थ सोचने लगते हैं। फिर पर्दा गिरकर दृश्य बदलता है और पर्दा उठते ही देखते हैं कि बहुत से शिष्यों के साथ बैठे एक आचार्य उन्हें पढ़ा रहे हैं। सिद्धार्थ पास जाता है।]

सिद्धार्थ—महात्मन् प्रणाम करता हूँ।

आलारकालाम—(जिनकी लम्बी जटाएँ हैं। भौंहों के बाल आँखों को ढके हुए हैं। वृद्ध शरीर। एक मात्र लंगोटी लगाए हुए हैं। शरीर पर भस्म, रुद्राक्ष की माला। भौंहों के बालों को हाथ से हटाकर देखते हैं) कौन?

सिद्धार्थ—मैं जिज्ञासु हूँ महाराज!

आलारकालाम—क्या चाहते हो।

सिद्धार्थ—जरा व्याधि, मृत्यु के निवारण का उपाय।

आलारकालाम—विचार तो अच्छा है। कुछ पढ़े भी हो?

एक विद्यार्थी—(दूसरे से धीरे से) कोई मोहिया दिखाई देता है। आए हैं जरा व्याधि मृत्यु के निवारण का उपाय जानने।

दूसरा विद्यार्थी—चेहरा तो गम्भीर है सुन्दर भी देखने से ज्ञात होता है कोई है धनवान। तुमने पाठ याद कर लिया?

पहला विद्यार्थी—हाँ ब्रह्मसूत्र रट गया है। मीमांसा समाप्त कर चुका हूँ।

दूसरा विद्यार्थी—कौनसी मीमांसा?

पहला विद्यार्थी—कौनसी मीमांसा क्या होती है, रहे मूर्ख ही।

दूसरा विद्यार्थी—अरे मूर्ख भाई मीमांसा दो—एक पूर्व मीमांसा और दूसरी उत्तर मीमांसा। पूर्व मीमांसा जैमिनि की है, जिसमें यज्ञ काण्ड है और उत्तर मीमांसा जिसमें ज्ञान काण्ड है। व्यास के सूत्र। समझे, मूर्खराज!

आलारकालाम—भाई इसका एकमात्र उपाय शास्त्र पढ़ना है। शास्त्र से ज्ञान प्राप्त करो। (ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः)

सिद्धार्थ—बहुत अच्छा महाराज! किन्तु ज्ञान से ही कुछ नहीं होगा कर्म भी तो चाहिए। एक व्यक्ति राजनीति जानते हुए भी राजा नहीं हो सकता।

आलारकालाम—किन्तु राजा के लिए राजनीति का जानना आवश्यक है। तुम पहले ज्ञान प्राप्त करो कर्म पीछे होगा। साधना भी [illegible] के साथ आवश्यक है।

सिद्धार्थ—जी ! (गुरुजी कुछ बोल रहे हैं, सिद्धार्थ सुन रहे हैं ।)

एक विद्यार्थी—तर्क से मुक्ति नहीं होती ।

दूसरा विद्यार्थी—विश्वास से भी नहीं ।

तीसरा विद्यार्थी—ज्ञान से भी नहीं ।

चौथा विद्यार्थी—केवल कर्म से भी नहीं ।

आलारकालाम—अरे मूर्खो केवल किसी एक वस्तु से कुछ नहीं होता । चलने के लिए दो पैर आवश्यक हैं भोजन के लिए पाँचों उँगलियाँ एक हाथ । मुक्ति के लिए भी तर्क के साथ ज्ञान विश्वास के साथ कर्म की आवश्यकता है ।

सब छात्र—(गद्गद् होकर) धन्य हैं गुरुदेव !

सिद्धार्थ—महाराज मुझे अपना शिष्य बनाइए ।

आलारकालाम—प्रिय वत्स रहो और पढ़ो । विश्वास है तुम्हारा कल्याण होगा ।

[सिद्धार्थ सिर झुकाकर गुरुदेव को प्रणाम करते हैं । गुरु उनके सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखते हैं ।]



दूसरा दृश्य

[नैरंजना और महानदनु नदी के संगम पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे सिद्धार्थ ध्यानमग्न बैठे हैं । उनके मुख पर गम्भीरता प्रसन्नता शान्ति विराज रही है । उस ध्यानावस्था में उस निर्जन स्थान पर भी न जाने कहाँ से वनी पशु आकर उनके पास बैठ गए हैं । एक सिंह उनके बिलकुल समीप भूमि पर आँखें बन्द किए बैठा है । उसके पास ही एक मृग बैठा हुआ सिंह के शरीर से अपने सींग मुजला रहा है । एक गाय उसका बछड़ा पास ही बैठे जुगाली कर रहे हैं । चिड़ियाँ कभी फुदककर सिंह के कभी गाय के ऊपर बैठ जाती हैं ।

और सिंह के मुख से लगे हुए मांस को चोंच से भरकर खा जाते हैं। ऐसा मालूम होता है यहाँ पर कोई पशु किसी का शत्रु नहीं है। एक रीछ टहलने में आता है और सिंह और गाय के बीच में अपनी जगह कर लेट जाता है। हरिण उससे अपने सींग खुजाने लगता है। सिंह सरककर गाय के बछड़े पर अपना पंजा रख देता है। बछड़ा बेखटके उसके पंजे चाटने लगता है। रीछ गाय के सींगों से अपना शरीर रगड़ता है। इतने में एक मोर कहीं से आ जाता है और पंख फैलाकर नाचने लगता है। उसे नाचते देखकर पास ही वृक्ष की जड़ से एक साँप निकल आता है और मोर के सामने फन उठाकर झूमने लगता है। यह दृश्य न जाने कब से उस प्रदेश में होता आ रहा है। न पशु बोलते हैं न किसी को तंग करते हैं। समय होते पशु इधर-उधर घूम फिर वहीं सिद्धार्थ के आसन के पास आकर बैठ जाते हैं मानों सबसे अधिक शान्ति सबसे अधिक सुख उन्हें वहीं मिलता हो। इतने में दो व्यक्ति घोड़े पर सवार होकर उधर निकल आते हैं और यह दृश्य देखकर विस्मित आश्चर्यचकित हो जाते हैं।]

पहला—(घोड़े से उतरकर) अरे देखो तो यह क्या है? क्या कभी ऐसा देखा है?

दूसरा—(आँखें फाड़े बहुत देर तक देखते रहकर) महान् आश्चर्य है। अवश्य ये महात्मा कोई महासिद्ध एवं योगी देख पड़ते हैं।

पहला—पशु-पक्षी अपनी शत्रुता भूलकर मानों एक दूसरे के परम मित्र हो गए हैं। वह देखो साँप झूमता हुआ मोर के गले से लिपट गया है।

दूसरा—और तुमने उस सिंह को नहीं देखा गाय का बछड़ा उसके पंजे चाट रहा है। सचमुच ये कोई बड़े महात्मा हैं। तेज तप की शान्त मूर्ति। कितना सुन्दर और आकर्षक मुख है।

[भक्ति से गद्गद् होकर दोनों प्रणाम करते हैं—पशु उन दोनों को आया जानकर एक-एक करके वहाँ से खिसकने लगते हैं।]

पहला—ऐसे महात्माओं के दर्शन बड़े पुण्य से होते हैं। महामुनि शतबार प्रणाम है आपको।

दूसरा—(भक्ति से गद्गद् होकर बार-बार प्रणाम करता है और जानवरों

की विचित्रता एवं प्रभाव से मुक्त हो जाता है) सचमुच आज मेरा जीवन सफल हुआ। चलो महाराज को यह समाचार दें।

[प्रणाम करके चले जाते हैं कौण्डिन्य अश्वजित भद्रक, वप्र और महानाम पाँचों बाहर हुए जब दिखाई देते हैं तथा उन दोनों के जाते ही फिर वे पशु एकत्र हो जाते हैं।]

कौण्डिन्य—(आश्चर्य से) देखो गुरुदेव का प्रभाव देखो ? पशु पक्षी भी अपनी पशुता भूल गए हैं ?

भद्रक—(प्रणाम करके) धन्य है गुरुदेव ? मैं आराड्कालाम ऋषि के आश्रम में ही इनको देखकर पहचान गया था कि ये कोई साधारण पुरुष नहीं हैं।

वप्र—इनकी गंभीर शान्त तप और तेज की पावन पुण्य प्रतिमा को देख कर मैंने जान लिया था कि ये एक दिन मनोवांछित अवश्य प्राप्त करेंगे। धन्य है तप का प्रभाव और देखो वह सिंह गाय के नीचे न अपनी देह भुला रहा है। मानों सिंह गाय का प्रेम सम्बन्ध परम्परा से चला आता हो।

[अश्वजित् मूक की तरह देखता रहता है। बोलने का यत्न करके भी बोल नहीं पाता है]

कौण्डिन्य—हमारा जीवन सफल हो गया। (दूसरी ओर से एक स्त्री प्रवेश करती है और पशुओं तथा महात्मा की मूर्ति को देखकर पत्थर की तरह अचल हो जाती है तथा प्रणाम करते ही चली जाती है) अभी समाधि टूटी नहीं है कदाचित् टूटनेवाली भी है क्योंकि महात्मा कुछ हिल रहे हैं। हम लोगों को दूर से यह सब देखना रहना चाहिए।

अश्वजित्—इन पशुओं का देखकर जाने का भी साहस किसे होगा ?

वप्र—नहीं इसलिए नहीं किन्तु इसलिए कहीं समाधि भंग न हो जाए। देखते नहीं हो कोई भी पशु बोल नहीं रहा है।

[इतनी देर में वे दो अश्वारोही राजा बिम्बसार के साथ आकर दूर खड़े हो जाते हैं और पशुओं तथा महात्मा का दर्शन करते हैं। सिद्धार्थ की समाधि टूटती है और वे धीरे-धीरे आँखें खोलते हैं गंभीर मुख-मुद्रा प्रसन्नता और तेज से चमक उठती है। इधर-उधर दृष्टि डालते हैं और साथ ही पशुओं को उस तरफ]

सिद्धार्थ—(हँसते हुए) कितना सुन्दर दृश्य है। धर्म ही सत्य है, धर्म ही पवित्र निधि है। धर्म पर ही जगत प्रतिष्ठित है। और एकमात्र धर्म से ही मनुष्य शान्ति पाप और दुखों से मुक्ति पा सकता है। जन्म में दुख है, अप्रिय के साथ मिलने में दुख है, तृष्णा से ही दुख की उत्पत्ति होती है। तृष्णा की निवृत्ति होने से दुख का निरोध होता है। इन पशुओं में भी तृष्णा शान्त है। आओ (उनकी तरफ प्रसन्नता से हाथ फैला देते हैं। सिंह उठकर सिद्धार्थ के चरणों में बैठ जाता है चीता उनके चरणों की रज से अपना मुख रगड़ने लगता है। बाघ उनके हाथ को चाटने लगते हैं। बकरा उनके शरीर से अपना मुँह रगड़ने लगता है। मोर नाचता है, साँप झूमने लगता है) तुम लोग मनुष्यता प्राप्त करके मुक्ति मार्ग के गामी हो। तुम्हारी आत्मा में प्रकाश हो। (बाघ की आँखों में आँसू गिरने लगते हैं सिंह मुँह फाड़ता है जैसे कुछ कहना चाहता हो। साँप फन फैला कर प्रणाम करता है और अपनी चोंच भूमि पर रगड़ने लगता है, चीता सपाट लेट जाता है। पक्षी चहचहाने लगते हैं प्रकृति में उल्लास छा जाता है। सिद्धार्थ झाड़ी में खड़े कुछ मनुष्यों को देखकर) आओ डरने की बात नहीं है। आओ क्या चाहते हो? (पशु पक्षी धीरे-धीरे खिसक जाते हैं, राजा डरते-डरते आगे बढ़ते हैं। प्रणाम करते हुए) कल्याण हो।

बिम्बसार—आज छः वर्ष से बराबर मैं देखता आ रहा हूँ कि इस स्थान पर आप समाधि लगाए हुए हैं। प्रात-काल और सायंकाल मेरे अनुचर आपकी समाधि टूटने की प्रतीक्षा में आते रहे हैं। किन्तु आज मेरे भाग्य का उदय हुआ है मैं स्वयं कई बार चुपचाप दर्शन करके चला जाता रहा हूँ।

सिद्धार्थ—हाँ मुझे बोध हो गया। मुझे जन्म मृत्यु का साक्षात्कार हो गया। मैंने महत् सत्य की प्राप्ति कर ली है राजन्!

बिम्बसार—महात्मन् मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा का पालन करके मैं अपने जीवन को सफल करूँ?

[राजा के भगत फलों का ढेर सिद्धार्थ के सामने रख देते हैं।]

सिद्धार्थ—मुझे किसी बात की इच्छा नहीं है राजन्। (शिष्य अब तक दूर से देख रहे थे। गुरुदेव के चरणों में आकर प्रणाम करते हैं) कल्याण

लाभ करो वत्स !

[सुजाता नाम की सेठ की कन्या का प्रवेश सिद्धार्थ के चरणों में प्रणाम करके]

सुजाता—महात्मन् पिछले दो वर्ष से मैं प्रात सायं श्रीचरणों के दर्शनार्थ आती रही हूँ खीर का थाल लेकर, इसी आशा में कि महात्मा की समाधि अब टूट गई होगी । आज मेरे जीवन का सौभाग्य है कि मैं अपनी उत्कट लालसा की पूर्ति का समय देख रही हूँ ।

सिद्धार्थ—तुम क्या चाहती हो बेटी ?

सुजाता—(दासी के हाथ से खीर का थाल लेकर श्रीचरणों में रख देती है और भक्ति विह्वल होकर बार-बार प्रणाम करती है) इस सेविका की यही इच्छा है भगवन् !

सिद्धार्थ—कल्याण लाभ करो बेटी लाओ मुझे भूख लग रही है । (थाल में से थोड़ा लेकर शेष कौण्डिन्य आदि को दे देते हैं) समाधि के अनन्तर इसकी आवश्यकता थी । (शिष्य जल लाकर सिद्धार्थ के हाथ मुँह धुलाते हैं । बिम्बसार देखते हैं । प्रभु ने उनके थालों को स्वीकार न करके एक साधारण कन्या का भोजन स्वीकार कर लिया है इससे उन्हें कुछ क्षोभ सा होता है ।)

सिद्धार्थ—यह कन्या कई बार मेरे लिए भोजन ला चुकी है बिम्बसार, इसलिए मैंने इसका भोजन स्वीकार किया । बुरा मानने की बात नहीं है राजन् । हम साधुओं के लिए राजा और प्रजा समान हैं ।

[भगवान की समाधि टूटने का समाचार बिजली की तरह आसपास के प्रदेशों में फैल जाता है और लोग अधिक से अधिक संख्या में बढ़ते चले आते हैं और आकर प्रणाम करके बैठते जाते हैं । बुद्धदेव लोगों को एकत्र जानकर उपदेश करते हैं]

बुद्ध०—हे सज्जनगण जिस क्षुद्र मद बुद्धि ने तुमको संसार की एकता से पृथक कर रखा है उस हेय बुद्धि को तुम छोड़ दो । बुद्धि को स्थिर करके तुम शील ग्रहण करो । शुभ कर्म के साधन द्वारा निर्मल मानस प्राप्त हो जाने पर अवश्य तुम्हारे सब दुःखों का नाश होगा । फूले हुए वृक्ष की भाँति रस-रूप में

बढ़े हुए दुखों का नाश कर सकोगे। बोध को जाग्रत करके तुम अपना प्रसार करो तो सारी हीनता क्षुद्रता स्वयं नष्ट हो जाएगी तथा तुम विश्व के साथ एकता का अनुभव करोगे। यही ज्ञान समस्त सत्य का सार है। (सब लोग सिर झुकाकर सुनते हैं।)

"हे मानवगण सब संघर्षों का नाश करके तुम परम सत्य की खोज में प्रवृत्त हो। इस सत्य का बीज तुम्हारे अन्तःकरण में छिपा है। जरा और व्याधि तुम्हारा स्वास्थ्य नष्ट करने के लिए दिन-रात प्रयत्न करते रहते हैं। जब तक मन में शान्ति लाभ नहीं कर सकोगे तब तक धन सम्पत्ति भोग सुख प्रतिष्ठा आदि कुछ भी तुमको वास्तविक आनन्द नहीं दे सकेंगे। (धन्य है गुरुदेव धन्य हैं आप)

"हे निर्वाण के अभिलाषी मानवगण तुम्हें अपने चित्त रूपी घोड़े को संयत करना होगा। नहीं तो नदी का प्रवाह जिस तरह किनारे पर उगे हुए पौधों को छिन्न भिन्न कर डालता है उसी तरह काम लालसा बार-बार आक्रमण करके तुम्हें पीड़ित करती रहेगी। तुम उठो स्वार्थ त्याग करके परार्थ के लिए अपनी क्षुद्रता को छोड़कर विराट् को ग्रहण करो।

सब—कृतार्थ हुए प्रभो !

हे धर्म के यात्री तुम अपनी प्रीति का सब काल सब देश में प्रसारित करो। तुम इसी जन्म में अपनी विराट् सत्ता का अनुभव कर सकोगे। यही तुम्हारी सर्वोपरि प्रतिष्ठा है। तुम आप ही अपने प्रकाश होकर आत्मशक्ति के द्वारा कल्याण लाभ कर सकते हो और विश्व के दुखी-दीनों को उठा सकते हो। सुख दुख आनन्द निरानन्द ही क्यों मृत्यु तक को अंगीकार करके सब प्राणियों के मंगल-साधन में अकुण्ठित चित्त से प्रवृत्त होओ और विश्व का कल्याण करो। अपनी क्षुद्र सत्ता का सम्पूर्ण रूप से त्याग करके विश्व-व्यापी विराट् सत्ता के भीतर अपने को जानो संसार में दुख का नाश होगा और तुम परम कल्याण लाभ करोगे।

[सब लोग मग्न मुग्ध की तरह बैठे रहते हैं, भगवान चुप हो जाते हैं।]

"सभी जीवों का कल्याण करो इसी में तुम्हारा कल्याण है।

में समाज का कल्याण है। संसार दुःख से पूर्ण है उसे मेरा संदेश सुनाओ। संसार के कल्याण में समाज के कल्याण में व्यक्ति का सुख है। जाओ पवित्र आत्म भावनाएँ तुम्हें धर्म की ओर प्रवृत्त करें।

बिम्बसार—(प्रणाम करके) मेरे जीवन का ध्येय बुद्धदेव की वाणी और उपदेश का प्रसार करना होगा।

शिष्य—हम लोग देश-देशान्तर में जाकर भगवान् की वाणी सुनाएँगे।

जनता—भगवान् बुद्धदेव की जय हो। विश्व का कल्याण करने को अवतरित भगवान् की जय हो।

[जय जय घोष से आकाश मण्डल गूंजने लगता है, भगवान् सोचते रहते हैं, प्रजाजन उनके मुख सौन्दर्य को देखते रहते हैं।]



तीसरा दृश्य

संध्या समय

[देवी गोपा साधारण वेश में बालक राहुल के साथ उद्यान की चौकी पर बैठी है। सामने फव्वारे से जल निकल रहा है। वह उसे ही देख रहा है। गोपा संध्या के समान निर्निमेष पलकों से न जाने क्या सोच रही है। बालक पहले बैठा-बैठा देखता रहता है फिर एकदम उठकर फव्वारे में तैरती मछलियों को देखने लगता है। गोपा बैठी बैठी गाने लगती है।]

दुःख हम किससे कहें—सुने कोई
याद हम किसकी करें—कहे कोई
याद किया पास गए मेरे प्राणधन
रूठ गए उनसे अभी मोड़ मुँह गए,
अपना भाग्य किसको कहें—कहे कोई
दुख रही आज कहीं दीनता सहारा नहीं

क्या हमारा जग कहीं जिसका किनारा नहीं,
प्रेम हम किससे करें—न है कोई।
देख उनके देश में न बन्धु हमारे,
छोड़ गए प्राण यहाँ मैं ही सहारे,
कैसे मन मसोसकर रहे कोई।
छूट गए मोह में वे हमको छोड़ के,
अपना प्राण किससे कहूँ पीड़ पीड़ के
दुःख हाय कब तलक सहे कोई
और हम किससे कहें—सुने कोई।

[गीत की ध्वनि से चारों ओर सन्नाटा छा जाता है पशु-पक्षी मूक हो जाते हैं। राहुल मछलियों का तैरना खेल देखकर माँ के पास आकर खड़ा होकर गीत सुनने लगता है।]

राहुल—माँ तुम कैसा सुन्दर गाती हो, गीत गाते-गाते तुम रो क्यों पड़ी ?

गोपा—बेटा (प्यार से गोद में बैठाकर) जिसके भाग्य में सदा रोना लिखा हो वह हँस कैसे सकता है ?

राहुल—माँ मुझे मछलियों का तैरना अच्छा लगता है। आओ देखें।

गोपा—नहीं बेटा तुम्हीं देखो।

राहुल—नहीं एक बार चलकर देखो कैसा सुन्दर लगता है। (पकड़कर फव्वारे के पास ले आता है) लाल-लाल मछलियाँ कैसी सुन्दर हैं माँ! छोटी छोटी मछलियाँ!

गोपा—हाँ बेटा बहुत सुन्दर हैं।

राहुल—पर ये तो कभी रोती नहीं हैं सदा हँसती नाचती तैरती रहती हैं। फिर तुम क्यों रोती हो ?

गोपा—इसलिए कि मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती।

राहुल—माँ मेरे पिताजी कहाँ गए ? मैं उन्हें देखना चाहता हूँ ?

गोपा—बड़े महाराज ही तुम्हारे पिता के समान हैं वे तुम्हें प्यार करते हैं न ?

राहुल—हाँ किन्तु सुकेशी मौसी कहती है कि वे हमारे पिता नहीं हैं। उनकी बड़ी दाढ़ी मुझे अच्छी नहीं लगती। मेरे पिताजी तो वे हैं जिनके चित्र की तुम पूजा करती हो। वे कहाँ गए ?

गोपा—वे वन में तप करने चले गए।

राहुल—तप करने! तप क्या होता है ?

गोपा—ईश्वर का ध्यान करना तप कहलाता है।

राहुल—ईश्वर क्या!

गोपा—जिसने हमें-तुम्हें सबको बनाया है।

राहुल—सबको बनाया है ? क्यों क्या वह न बनाता तो हम न बनते ?

गोपा—हाँ! न बनते। उसी से मिलने वे चले गए हैं।

राहुल—मिलकर कब लौटेंगे ?

गोपा—जब उनकी इच्छा होगी।

राहुल—मैं उन्हें बुला लाऊँगा और कहूँगा चलो—'माँ रोती रहती है।' तुम रोया मत माँ। (सुकेशी का प्रवेश राहुल मछलियाँ देखने चला जाता है।)

सुकेशी—सखी बहन भोजन कर लो कब तक इस तरह रहोगी।

गोपा—जब तक रहा जाएगा। इस जीवन में केवल एक साध है। उनका दर्शन। वे मेरे हृदय की प्रतिमा हैं। मेरे प्राणों के दृढ़ विश्वास हैं सुकेशी। वे महान् हैं मैं तुच्छ। वे प्रभु हैं मैं सेविका। सुना है वे कहीं पास ही विचर रहे हैं।

सुकेशी—हाँ उन्हें ज्ञान प्राप्त हो गया है। बड़े-बड़े दूर से राजा महाराजा प्रजाजन उनके दर्शनों को आते हैं। उनके चरणों की धूलि मस्तक पर रखते हैं और अपने जीवन को धन्य मानते हैं। देवी गौतमी ने महाराज से प्रार्थना की है कि वे सिद्धार्थ के दर्शनों को चलें।

गोपा—फिर महाराज ने क्या कहा ?

सुकेशी—महाराज ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

गोपा—पिता का सम्मान उन्हें रोक रहा है किन्तु मैं चलूँगी सुकेशी।

सुकेशी—कुल के मुख्य नर-नारी उनसे दीक्षा ले रहे हैं। उनके उपदेश को सुनकर लोगों में नया जीवन नया उत्साह भर रहा है। देवदत्त उनके साथ हैं। वे साधु हो गए हैं।

गोपा—क्या वे भी साधु हो गए? (आँखों में आँसू भर आते हैं) कैसे होंगे वे? क्या वे यहाँ आएँ तो मैं उन्हें देख पाऊँगी? मैं उनके चरणों में अपने को अर्पण कर दूँगी सखी उनके पैरों की धूल से अपने सुहाग का शृंगार करूँगी। आज मेरी बाईं आँख फड़क रही है। (परिचारिका दौड़ी हुई आती है)

परिचारिका—चलो देवी। देखो बाहर कौन है।

गोपा, सुकेशी—कौन है? बता।

परिचारिका—तुम्हारे स्वप्न आज मूर्त होकर आए हैं। चलो।



चौथा दृश्य

प्रासाद के बाहर

[सौम्य मुखमुद्रा धारण किए अमिताभ बुद्ध खड़े हैं। नगर के बहुत नर-नारी शुद्धोदन महाराज गौतमी उनके सामने हाथ जोड़कर खड़े हैं। पी बुद्ध शिष्य हैं।]

भगवान् बुद्ध—जीवन साम करो जीवन के महत्त्व को समझो। धर्म जीवन है। धर्म ही ईश्वर है। संसार के कल्याण में धर्म का कल्याण है। मनु जगत् का एक अंग है महान् का एक भाग है। महान् की प्राप्ति जीवन प्राप्ति है। उठो साधारण सुख से ऊपर उठकर महान् सुख को जानो। कि की हिंसा मत करो। किसी को कष्ट न दो। (एकदम गोपा राहुल को लेप बुद्ध के पैरों पर आ गिरती है और निर्निमेष नयनों से पति की ओर देखती रह है) कल्याण लाभ करो बच्चे! कल्याण लाभ करो।

शुद्धोदन—(विह्वल होकर) बेटा !

बुद्ध—राजन् धर्म प्राप्त हो।

गोपा—(पति की ओर देखकर धीरे से) प्राणनाथ !

बुद्ध—माँ ! सत्य की शरण में आओ वहीं तुम्हें कल्याण लाभ होगा।

सब—भगवान् बुद्ध की जय धर्मनाथ की जय नमो बुद्धाय नमो बुद्धाय

बुद्ध—कल्याण कल्याण।

एक—धम्मं शरणं गच्छामि।

दूसरा—संघं शरणं गच्छामि।

तीसरा—बुद्धं शरणं गच्छामि।

